राष्ट्रीय सहारा
नई दिल्ली • शनिवार • 5 जुलाई • 2025
www.rashtriyasahara.com

अनमोल वचन

दुनिया में सीधे रास्ते कहीं नहीं हैं। हमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते तय करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।
-माओ-त्से-तुंग

विकास की जवाबदेही

लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला ने संसद में होने वाले व्यवधानों में आई कमी, सार्थक बहसों और उत्पादकता में सुधार की चर्चा की। हरियाणा के मानेसर में राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों के शहरी स्थानीय निकायों के प्रमुखों के पहले राष्ट्रीय सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि नगर निकायों में प्रश्नकाल व शून्यकाल जैसी प्रक्रियाएं भी शामिल की जाएं जिससे जनप्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्र से संबंधित मुद्दे उठा सकें। बिरला ने कहा कि इससे जवाबदेही व पारदर्शिता बढ़ेगी। देश की प्राचीन परंपराओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि भारत को लंबे समय से लोकतंत्र की जननी के रूप में मान्यता दी गई थी। नगर निकाय के कामकाज, नियमबद्ध व नियमित होने पर बिरला ने जोर देते हुए कहा कि मैंने देखा है, नगर

पालिकाओं, परिषदों व निगमों में पूरे साल बैठकें नहीं होतीं। इसे उन्होंने स्वस्थ लोकतांत्रिक परंपरा नहीं कहा। सवाल नगर पालिकाओं, परिषदों या निगमों का ही नहीं है, दरअसल विधानसभाओं तक में देखने में आता है कि बहस के दरम्यान योजनाबद्ध व्यवधान होते हैं। बेशक, लोकतांत्रिक संवाद, स्वस्थ बहस, नीति निर्माण व सुशासन के लिए जरूरी है कि नियमित बैठकें होती रहें। देश में विभिन्न शहरी स्थानीय निकाय-नगर निगम, नगर परिषदें, पंचायतें, छावनी बोर्ड, टाउनशिप, पोर्ट-हैं जो जलापूर्ति, साफ-सफाई, सड़कों, प्रकाश, जन्म-मृत्यु, अग्निशमन के अतिरिक्त विकास कार्य भी करती हैं। मगर जैसा कि बिरला ने कहा, इनकी बैठकें नाममात्र होती हैं, जिनके नतीजे बहुधा शिफर होते हैं। भविष्य में, इस सम्मेलन में बेहतर कार्य करने वाले निकाय को प्रोत्साहित करने की व्यवस्था भी की जा सकती है ताकि अन्य संबंधित प्रभागों का उत्साहवर्धन हो। निकायों की बैठकों में कई दफा उग्र उपद्रव भी होता देखा जाता है जिस पर कड़ी कार्रवाई का नियम भी सख्ती से लागू किया जाए। देखने में आता है कि यह जिम्मेदारी निभाने में राज्य सरकारें लापरवाही करती हैं। परंतु यदि राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित सम्मेलन में बेहतरीन व्यवस्था व भारी खर्च किया जा रहा है तो स्वच्छता, नागरिक सुविधाओं, अपशिष्ठ प्रबंधन, यातायात नियंत्रण, लोकल परिवहन, शुद्ध पेयजल व हरित क्षेत्र के विस्तार जैसी जिम्मेदारियों के प्रति जवाबदेही भी तय होनी चाहिए ताकि विकसित भारत 2047 के लिए समूचा देश एकजुट होकर अपने हिस्से की आहूति दे।

घरेलू निवेशकों का वर्चस्व

वैश्विक स्तर पर राजनीतिक अस्थिरता, कई देशों में तनावपूर्ण हालात और आर्थिक अनिश्चितताओं के चलते विदेशी निवेशकों के सतर्क रहने के कारण अप्रैल-जून में भारतीय रियल एस्टेट क्षेत्र में संस्थागत निवेश 33 फीसद से घट कर 1.69 अरब डॉलर रह गया है। रियल एस्टेट परामर्शदाता कंपनी कोलियर्स इंडिया यह आकलन लगाया है। कोलियर्स इंडिया के आंकड़ों से पता चलता है कि बीते साल अप्रैल-जून में रियल एस्टेट क्षेत्र में जो 253.33 करोड़ डॉलर का संस्थागत निवेश था, वह घट कर 169.12 करोड़ डॉलर रह गया। समीक्षाधीन अवधि में विदेशी निवेशकों से प्राप्त धन प्रवाह 204.68 करोड़ डॉलर से लगभग आधा होकर 104.84 करोड़ डॉलर रह गया। बेशक, भू-राजनीतिक हालात तमाम देशों को प्रभावित कर रहे हैं, और तमाम अर्थव्यवस्थाएं इनसे असरंदोज हो रही हैं, लेकिन भारत की अर्थव्यवस्था के बुनियादी कारक हालिया

वर्षों में बराबर इतने मजबूत बने रहे हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक परिदृश्य के घटनाक्रम के असर से ज्यादा प्रभावित नहीं होने पाती। ऐसा ही हमने कोविड-19 महामारी के समय भी देखा था। उस समय वैश्विक अर्थव्यवस्था को खासा झटका लगा था, लेकिन भारत अपनी आर्थिक गतिविधियों को चलायमान बनाए रख सका तो मात्र इसलिए कि घरेलू मांग शिथिल नहीं पड़ी थी। अभी भी वैश्विक भू-राजनीतिक स्थितियां तमाम देशों पर असर डाल रही हैं और इसी के चलते भारत में रियल एस्टेट क्षेत्र पर भी असर पड़ा है। लेकिन इतने विपरीत हालात में भी भारत के घरेलू निवेश ने रियल एस्टेट को संभाले रखा है। घरेलू निवेशकों का उत्साह बराबर बना रहा और उन्होंने अप्रैल-जून के दौरान 64.28 करोड़ डॉलर का निवेश किया जो पिछले वर्ष की संबद्ध अवधि के 48.65 करोड़ डॉलर से 32 फीसद अधिक है। कह सकते हैं कि घरेलू पूंजी भारत के रियल एस्टेट निवेश में एक प्रमुख चालक के रूप में उभरी है। कुल निवेश में इसकी हिस्सेदारी 2021 के 16 फीसद से बढ़ कर 2024 में 35 फीसद हो गई। घरेलू निवेशकों के प्रभुत्व के चलते अनिश्चतताओं का भारतीय रियल एस्टेट क्षेत्र में ज्यादा असर नहीं पड़ने पाया। रियल एस्टेट क्षेत्र के कमजोर न पड़ने के कारण इससे संबद्ध अन्य क्षेत्रों में भी मजबूती बनी रही जो अर्थव्यवस्था के लिए राहतकारी है।

कटाक्ष/ कबीरदास

वो तेरा शीशमहल, ये मेरा...

हम तो दिल्ली वाली रेखा गुप्ता जी की दलील के कायल हो गए। क्या हुआ कि तब दिल्ली का सीएम रहते हुए केजरीवाल ने अपना शीशमहल बनवाया था और अब सीएम की गद्दी पर वह हैं, सो वह भी अपना शीशमहल बनवा रही हैं। पर नाम में क्या धरा है? नाम शीशमहल होने से क्या होता है? कहां केजरीवाल का शीशमहल और कहां रेखा जी का शीशमहल! दोनों में कैसी बराबरी?

सुना है कि केजरीवाल के शीशमहल में सोलह कमरे थे। सुनते हैं कि रेखा जी के शीशमहल में पूरे तेईस हैं। सुना है कि केजरीवाल के शीशमहल में अठारह एसी थे। सुनते हैं कि रेखा जी के शीशमहल में चौबीस हैं। सुना है कि केजरीवाल के शीशमहल में दो झूमर थे। सुनते हैं कि रेखा जी के शीशमहल में पांच हैं। सुना है कि केजरीवाल के शीशमहल में तीन बड़े वाले टीवी थे। सुनते हैं कि रेखा जी के शीशमहल में पांच बड़े वाले टीवी हैं। सुना है कि केजरीवाल के शीशमहल में सर्दियों में गर्म और गर्मियों में ठंडे पानी वाला बड़ा स्विमिंग पूल था। सुनते हैं कि रेखा जी के शीशमहल में दो स्विमिंग पूल हैं, एक छोटा एकदम पर्सनल और एक बड़ा। रेखा जी के शीशमहल में केजरीवाल वाले से बड़ा किचन। रेखा जी के शीशमहल में केजरीवाल वाले से बड़े और ज्यादा बाथरूम। रेखा जी के शीशमहल में केजरीवाल वाले से बड़े बाथटब। रेखा जी वाले में केजरीवाल वाले से ज्यादा पर्दे। रेखा जी वाले में केजरीवाल वाले से ज्यादा लाइटें। रेखा जी वाले में केजरीवाल वाले से ज्यादा जमीन। रेखा जी वाला हर चीज में केजरीवाल वाले से सवाया-डेढ़ा। दोनों में कहां की बराबरी? नाम की बराबरी भी कोई बराबरी है, लल्लू! कहां केजरीवाल का शीशमहल, जो उसने अपनी अय्याशी के लिए बनवाया था। और कहां रेखा जी का शीशमहल, जो उन्होंने दिल्ली की जनता के ऐश और अपनी तपस्या के लिए बनवाया है। जब भी दिल्ली में गर्मी ज्यादा होगी, पब्लिक रेखा जी वाले शीशमहल में पहुंच जाएगी और एसी की हवा खाकर, स्विमिंग पूल में डुबकी लगाकर निकल लेगी। जब सर्दी बढ़ जाएगी, तेईस में से बाईस कमरों में रैन बसेरों की रात की पाली चालू हो जाएगी। जब दिल्ली में...बस भी करो यार! कैसी तुलना? कहां केजरीवाल का शीशमहल, कहां रेखा जी का शीामहल! जन-सेवा हो तो रेखा जी जैसी!

नीतीश का नया दांव

बिहार

प्रवीण कुमार

बिहार की राजनीति में अगर किसी नेता को समय की नब्ज पहचानने वाला चाणक्य कहा जाए तो वह नाम मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का ही होगा। तीन दशकों से अधिक के लंबे राजनीतिक सफर में नीतीश ने साबित कर दिया है कि बिहार जैसे जटिल और सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से संवेदनशील राज्य में विकास और राजनीति को साथ लेकर चला जा सकता है।

जैसे-जैसे राज्य में चुनावी तापमान चढ़ रहा है, नीतीश अपनी सियासी बिसात पर एक के बाद एक ऐसे पत्ते खोलने शुरू कर दिए हैं, जिनसे विपक्षी खेमे में हलचल तेज होना स्वाभाविक है। हाल में मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने सीतामढ़ी के पुनौराधाम के सर्वांगीण विकास के लिए 883 करोड़ रुपये की महत्त्वाकांक्षी योजना को कैबिनेट से मंजूरी दिलवाकर न सिर्फ मिथिला क्षेत्र के लोगों को एक नई सौगात दी है, बल्कि अपनी 'विकास पुरुष' वाली छवि को एक बार फिर मजबूती से जनता के सामने रखा है। यह फैसला साधारण धार्मिक स्थल के नवीनीकरण से कहीं अधिक महत्त्व रखता है। पुनौराधाम वह पवित्र स्थान है, जिसे माता सीता की जन्मभूमि माना जाता है। मिथिला की अस्मिता, लोक-गौरव और सांस्कृतिक पहचान से गहराई से जुड़ा यह स्थल वर्षों से उचित सरकारी देखरेख और सुविधाओं से वंचित रहा। हर साल लाखों श्रद्धालु यहां दर्शन के लिए आते हैं, लेकिन वहां उनके ठहरने, भोजन और मूलभूत सुविधाओं का अभाव खटकता रहा।

नीतीश ने इस पौराणिक स्थल को भव्य स्वरूप में विकसित करने का जो संकल्प लिया है, उसने मिथिला के करोड़ों लोगों के मन में उम्मीद जगा दी है। मालूम हो कि नीतीश ने इस महत्त्वाकांक्षी योजना की घोषणा अपनी प्रगति यात्रा के दौरान की थी। अब जब कैबिनेट से 883 करोड़ रुपये की स्वीकृति मिल चुकी है, तो इसे धरातल पर उतारने की तैयारियां भी शुरू हो गई हैं। नीतीश सरकार का दावा है कि पूरी योजना को चरणबद्ध तरीके से कार्यान्वित किया जाएगा ताकि हर स्तर पर पारदर्शिता बनी रहे, साथ में निर्माण कार्य किसी भी प्रकार की बाधा या भ्रष्टाचार का शिकार न हो। नीतीश ने हमेशा खुद को विकासवादी और सेक्युलर छवि वाले नेता के रूप में प्रस्तुत किया है, लेकिन वह यह भी जानते हैं कि बिहार जैसे राज्य, जहां जाति और धर्म की राजनीति की जड़ें बहुत गहरी हैं, में धार्मिक आस्था से जुड़े मुद्दों को नजरअंदाज करना ठीक नहीं होगा। लिहाजा, उन्होंने इस धार्मिक परियोजना को रोजगार, पर्यटन और आधारभूत संरचना से जोड़कर इसे भावनात्मक मुद्दा ही नहीं रहने दिया, बल्कि इसके माध्यम

से स्थानीय अर्थव्यवस्था और रोजगार के अवसरों को मजबूती देने का रास्ता भी खोला है।

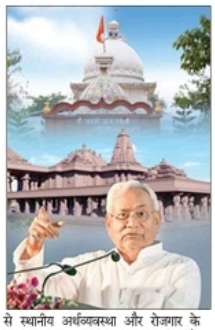

इस परियोजना से हजारों लोगों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिलेगा। तीर्थयात्रियों के लिए यात्री निवास, होटल, भोजनालय, पूजा सामग्री विक्रेता से लेकर हस्तशिल्प कारीगर, लोक कलाकार सबको काम मिलेगा। मिथिला की मधुबनी पेंटिंग, मखाना उत्पाद और पारंपरिक हस्तशिल्प को देश-दुनिया में पहचान दिलाने का अवसर भी बढ़ेगा। नीतीश का अनुभव कहता है कि जब विकास किसी धार्मिक आस्था से जुड़ जाता है तो उसका असर गहरा और व्यापक होता है।

विपक्षी खेमे के सामने भी चुनौती यह है कि वह इस फैसले का खुल कर विरोध नहीं कर सकता क्योंकि धार्मिक स्थल के विकास के खिलाफ जाने का अर्थ होगा सीधे जनता की आस्था से टकराना। हालांकि कुछ आलोचक जरूर सवाल उठा सकते हैं कि इतने सालों में यह काम क्यों नहीं हुआ, लेकिन नीतीश का जवाब यही है कि अब वक्त आ गया है कि मिथिला को वह सम्मान मिले, जिसका वह दशकों से हकदार रहा है। नीतीश ने अपनी सियासी यात्रा में सड़क से लेकर बिजली, शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में जो काम किया है, उसने जनता के बीच उनकी विश्वसनीयता को मजबूत किया है। अब आस्था को विकास से जोड़ने का नया कदम उसी भरोसे को और गहरा करता दिख रहा है। पुनौराधाम परियोजना को लेकर एक और खास बात यह है कि इसे अयोध्या धाम स्थित राम मंदिर से सड़क मार्ग से जोड़ने की योजना पर भी काम चल रहा है।

यदि यह योजना साकार होती है तो देश के कोने-कोने से श्रद्धालुओं का मिथिला पहुंचना आसान हो जाएगा। इससे धार्मिक पर्यटन को ही नहीं, बल्कि परिवहन और होटल उद्योग को भी गति मिलेगी। स्थानीय छोटे व्यापारियों से लेकर बड़े निवेशक तक इससे लाभान्वित होंगे। मिथिला के युवाओं के लिए यह एक सकारात्मक संकेत है कि अब उन्हें रोजगार के लिए बड़े शहरों की ओर पलायन नहीं करना पड़ेगा। अयोध्या से मिथिला का यह धार्मिक-सांस्कृतिक मार्ग सिर्फ सड़क का संपर्क नहीं होगा, बल्कि यह दो महान सांस्कृतिक केंद्रों को जोड़कर पूरे उत्तर भारत को एक नई सांस्कृतिक पहचान भी देगा। हर वर्ष लाखों श्रद्धालु रामायण सर्किट की यात्रा करते हैं। इस नये मार्ग से यह यात्रा और भी सुव्यवस्थित और सुविधाजनक होगी। महिलाओं और युवाओं के लिए स्वरोजगार के नये अवसर पैदा होंगे। स्वयं सहायता समूह स्थानीय उत्पादों जैसे मिथिला पेंटिंग, मखाना, पान और हस्तकला को बेचने के लिए बाजारों तक पहुंच बनाएंगे।

कुल मिलाकर देखा जाए तो पुनौराधाम केविकास की योजना नीतीश की राजनीतिक दूरदृष्टि, प्रशासनिक कुशलता और संवेदनशील नेतृत्व का साक्षात प्रमाण है। अगर परियोजना समय-सीमा में पूरी होती है और इसमें पारदर्शिता बनी रहती है तो यह आने वाले कई चुनावों में नीतीश के लिए मजबूत और कारगर मुद्दा साबित होगी। बिहार की जनता ने नीतीश के विकास के वादों को अब तक ज्यादातर जमीन पर उतरते देखा है, इसलिए उम्मीद है कि पुनौराधाम भी जल्द ही भव्यता के साथ श्रद्धालुओं को स्वागत करता मिलेगा। बहरहाल, सबकी निगाहें इस बात पर टिकी हैं कि यह ऐतिहासिक परियोजना कितना बदलती है मिथिला का चेहरा और कितना मजबूत करेगी नीतीश के चुनावी भविष्य को। लेकिन इतना तो तय है कि नीतीश ने 2025 की चुनावी सरगर्मियों के बीच फिर से ऐसा सियासी दांव चल दिया है, जिसने बिहार की चुनावी हवा को एक नई दिशा दे दी है, जहां आस्था, विकास और राजनीतिक चतुराई का अनोखा संगम देखने को मिलेगा।

(लेख में व्यक्त विचार निजी हैं)

पुनौराधाम परियोजना को लेकर विपक्षी खेमे के सामने चुनौती यह है कि वह इस फैसले का खुल कर विरोध नहीं कर सकता क्योंकि धार्मिक स्थल के विकास के खिलाफ जाने का अर्थ होगा सीधे जनता की आस्था से टकराना। हालांकि कुछ आलोचक जरूर सवाल उठा सकते हैं कि इतने सालों में यह काम क्यों नहीं हुआ, लेकिन नीतीश का जवाब यही है कि अब वक्त आ गया है कि मिथिला को वह सम्मान मिले, जिसका वह दशकों से हकदार रहा है

2030 तक एक अरब अमेरिकी डॉलर के हल्दी निर्यात का लक्ष्य

- सरकार ने 2030 तक एक अरब अमेरिकी डॉलर मूल्य के हल्दी निर्यात का लक्ष्य रखा है
- निजामाबाद (तेलंगाना) में हल्दी बोर्ड के मुख्यालय के उद्घाटन अवसर पर केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने यह जानकारी दी
- जानकारी के मुताबिक, हल्दी की फसल की गुणवत्ता में सुधार, अनुसंधान और हल्दी किसानों की आय में सुधार के लिए सरकार ने 200 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं

(मीडिया इनपुट्स)

केजरीवाल के 'शीशमहल' को लेकर भाजपा के हो-हल्ले और दोहरेपन की कलई खुल चुकी है। मुखर भक्तों ने चुप्पी अख्तियार कर ली है। इस बीच दिल्ली के नागरिकों के हालात नहीं बदले हैं। भयावह ही हुए जा रहे हैं।

स्वाति चतुर्वेदी, पत्रकार
@bainjal

कबाड़ बनते वाहनों का समाधान

पुलिस स्टेशन | रजनीश कपूर

भारत में अपराधों की जांच और न्यायिक प्रक्रिया में वाहन अक्सर महत्त्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में उपयोग किए जाते हैं। चाहे हत्या, चोरी, डकैती, तस्करी या सड़क दुर्घटना का मामला हो, वाहन जैसे कार, मोटरसाइकिल, ट्रक या अन्य साधन अपराध के दृश्य का अभिन्न हिस्सा हो सकते हैं। पुलिस द्वारा इन वाहनों को जब्त कर लिया जाता है और इन्हें साक्ष्य के रूप में अदालत में पेश किया जाता है। हालांकि, जब्त वाहनों का प्रबंधन और रखरखाव ऐसी समस्या बन चुका है, जो न केवल पुलिस प्रशासन, बल्कि पर्यावरण, संसाधनों और सामाजिक दृष्टिकोण से भी गंभीर चुनौती बन गया है। पुलिस स्टेशनों और मालखानों में वाहन वर्षों तक सड़ते रहते हैं, जिससे जगह की कमी होती है, और व्यवस्था की नाकामी भी उजागर होती है।

भारत में अपराधों की जांच के दौरान वाहनों की जब्ती एक सामान्य प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए, यदि कोई वाहन किसी हिट-एंड-रन मामले में शामिल है, तो उसे फॉरेंसिक जांच के लिए जब्त किया जाता है। तस्करी या डकैती जैसे मामलों में वाहनों को अपराध के साधन के रूप में देखा जाता है। भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 102 के तहत पुलिस को ऐसे वाहनों को जब्त करने का अधिकार है, जो अपराध से संबंधित हों। जब्ती के बाद वाहनों को मालखाने या पुलिस स्टेशन के परिसर में रखा जाता है, जब तक कि मामले की सुनवाई पूरी नहीं हो जाती। हालांकि, इस प्रक्रिया में कई खामियां हैं। सबसे बड़ी तो यह है कि भारत में न्यायिक प्रक्रिया अक्सर लंबी चलती है। कई मामलों में सुनवाई में वर्षों लग जाते हैं। इस दौरान जब्त वाहन पुलिस स्टेशनों में खड़े रहते हैं। बारिश, धूप-धूल के संपर्क में रहने के कारण ये धीरे-धीरे कबाड़ में तब्दील हो जाते हैं। जब्त वाहनों के सड़ने का प्रभाव पुलिस प्रशासन तक सीमित नहीं है, इनका समाज पर भी गहरा असर पड़ता है। कई मामलों में ये वाहन उन लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण संपत्ति होते हैं, जो शायद निर्दोष हों या जिनके खिलाफ कोई ठोस सबूत न मिले। उदाहरण के लिए, एक ऑटो-रिक्शा चालक या टैक्सी ड्राइवर के लिए उसका वाहन उसकी आजीविका का मुख्य साधन होता है। जब ऐसे वाहन लंबे समय तक पुलिस हिरासत में रहते हैं, तो मालिक की आर्थिक स्थिति पर बुरा असर पड़ता है।

यह सामाजिक असमानता को और बढ़ाता है, क्योंकि अधिकांश प्रभावित लोग निम्न या मध्यम वर्ग से होते हैं। इसके अलावा, पुलिस स्टेशनों के बाहर खड़े वाहन आस-पास के निवासियों के लिए परेशानी का कारण बनते हैं। सड़कों को अवरुद्ध करते हैं, पार्किंग की समस्या पैदा करते हैं। वाहनों के महत्त्वपूर्ण हिस्से, जैसे बैटरी, टायर या इंजन के पुर्जे आदि गायब हो जाते हैं।

इस समस्या के समाधान के लिए नीतिगत और संरचनात्मक सुधारों की आवश्यकता है। पहला कदम यह हो सकता है कि वाहनों की जब्ती और छोड़ने की प्रक्रिया को डिजिटल और पारदर्शी बनाया जाए। प्रत्येक जब्त वाहन का रिकॉर्ड केंद्रीकृत डेटाबेस में दर्ज किया जाना चाहिए, जिसमें वाहन की स्थिति, जब्ती की तारीख और मामले की प्रगति की जानकारी हो। इससे न केवल पारदर्शिता बढ़ेगी, बल्कि यह भी सुनिश्चित होगा कि वाहन अनावश्यक रूप से लंबे समय तक हिरासत में न रहें। दूसरा, फॉरेंसिक जांच की प्रक्रिया को तेज करना होगा। कई पुलिस स्टेशनों में फॉरेंसिक सुविधाओं की कमी है, जिसके कारण वाहनों को लंबे समय तक रखना पड़ता है। डिजिटल साक्ष्य, जैसे वाहन की तस्वीरें और 3डी स्कैन, को अदालतों में स्वीकार करने की नीति बनानी चाहिए। इससे भौतिक वाहन को लंबे समय तक रखने की आवश्यकता कम होगी। जब वाहन साक्ष्य के रूप में उपयोग के लिए आवश्यक न हों, तो उनकी नीलामी या वैकल्पिक उपयोग की प्रक्रिया को तेज करना होगा। एक ऑनलाइन नीलामी पोर्टल, जहां वाहनों की स्थिति और नीलामी की प्रक्रिया सार्वजनिक हो, इस समस्या को हल कर सकता है। कुछ मामलों में, जब्त वाहनों को सरकारी उपयोग, जैसे पुलिस या आपातकालीन सेवाओं के लिए, पुनः उपयोग में लाया जा सकता है बशर्ते वे कार्यशील स्थिति में हों। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से सड़ते वाहनों को रीसाइक्लिंग के लिए भेजा जाना चाहिए।

भारत में वाहन रीसाइक्लिंग उद्योग अभी प्रारंभिक अवस्था में है, लेकिन इसे बढ़ावा देने से न केवल पर्यावरण को लाभ होगा, बल्कि यह आर्थिक अवसर भी पैदा करेगा। बहरहाल, इस समस्या का समाधान तभी संभव है, जब नीतिगत सुधार और तकनीकी नवाचार को एक साथ लागू किया जाए। वाहनों को साक्ष्य के रूप में उपयोग करने की प्रक्रिया को और अधिक कुशल, पारदर्शी और समयबद्ध बनाना होगा। केवल समग्र दृष्टिकोण ही समस्या को जड़ से खत्म कर सकता है। इससे यह भी सुनिश्चित होगा कि अपराध में शामिल वाहन न केवल न्याय प्रक्रिया में सहायक हों, बल्कि समाज और पर्यावरण पर भी बोझ न बनें।

हमारी ताकत | संत राजिन्दर

हम अत्यंत खुशनसीब हैं कि हमारी आत्मा को मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है। यदि हम दूसरी योनियों की ओर नजर करें तो हम देखेंगे कि उनका जीवन कितना मुश्किल होता है? उन्हें प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए आश्रय ढूंढना पड़ता है। इसके अलावा वे हमेशा शिकारियों के भय से सहमे रहते हैं। हालांकि अनेक लोग पालतू जानवरों से परिवार के एक सदस्य के रूप में पेश आते हैं लेकिन फिर भी पालतू जानवर उनके गुलाम ही होते हैं। जानवर या पशु-पक्षी कभी सोच नहीं सकते कि वे कौन हैं? यहां क्यों आए हैं? और कहां जा रहे हैं? हम भाग्यशाली हैं कि हम इंसान के रूप में पैदा हुए हैं, जिसमें हम स्वयं को जान सकते हैं, और समझ सकते हैं कि हमें प्रभु ने यहां क्यों भेजा है? मनुष्य शरीर में आना बड़ी बरकत है क्योंकि इसी में हम अपने आपको जान सकते हैं और पिता-परमेश्वर को पा सकते हैं। इसके लिए हमें प्रभु का हमेशा शुक्राना अदा करना चाहिए। हममें से ऐसे कितने लोग हैं जो मनुष्य शरीर को पाने और अपनी अच्छी सेहत के लिए प्रभु का शुक्राना अदा करते हैं? जब हम किसी गंभीर बीमारी की चपेट में आ जाते हैं या किसी दुर्घटना से ग्रस्त हो जाते हैं, तब हमें बहुत ही ज्यादा पीड़ा होती है। तो उस वक्त हम प्रभु से बड़े ही जोर-शोर से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी पीड़ा को दूर कर हमें स्वस्थ कर दें। प्रभु की अपार दयामेहर से जब हमारी बीमारी या पीड़ा का अंत हो जाता है, तब हम भले ही एक बार हे प्रभु! आपका धन्यवाद जैसे शब्द बोलते हैं लेकिन जब हम सेहतमंद होते हैं, तो हम प्रभु का शुक्राना अदा नहीं करते। कई बार हमारे जीवन में कुछ आकस्मिक अप्रिय घटित हो जाता है जैसे कि यदि हमारे पास पच्चीस वर्ष से कोई नौकरी थी लेकिन जब एक बार हम कंपनी में छंटाई की वजह से हटा दिए जाते हैं तो हम कहते हैं कि प्रभु है ही नहीं। चाहे प्रभु ने हमें जीवन में कितना भी दिया हो, यदि एक बार कुछ बिगड़ जाता है तो हम प्रभु को ही दोष देते हैं। क्या हमने कभी सोचा है कि जब हम ऐसा करते हैं तो प्रभु को कैसा महसूस होता होगा? प्रभु का प्रेम और आशीर्वाद ही हमारी सारी समस्याओं का अंत कर सकता है। यदि हमें यह अनुभव हो जाए कि प्रभु हमेशा हमारे साथ हैं, तब यही भावना हमें ताकत और साहस देगी।

रीडर्स मेल

शासन-प्रशासन की अच्छी पहल

भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों के लोगों का समावेश है। वे सर्व धर्म समभाव की दृष्टि से मानवता का संदेश देते हैं। मोहर्रम पर हर साल कहीं न कहीं कुछ अप्रिय घटना हो ही जाती है, इसी को मद्देनजर कोई अप्रिय घटना न हो, इसके लिए प्रशासन का सख्त होना बहुत जरूरी है। प्रशासन की अच्छी पहल है कि थाना स्तर पर बैठक कर लोगों को शांतिपूर्ण तरीके से मोहर्रम मनाने की अपील की गई है। साथ ही, मोहर्रम के जुलूस निकालने के लिए लाइसेंस अनिवार्य किया गया है, डीजे एवं हथियार पर प्रतिबंध लगाया गया है। जुलूस में जो सम्मिलित होंगे उन्हें स्थानीय थाना में परिचय पत्र जमा करना होगा। किस रास्ते से जुलूस निकालेंगे इसका ब्योरा प्रशासन को देना होगा। सब लोगों को चाहिए कि प्रशासन के निर्देशों का पालन करके इस मुहर्रम के जुलूस को शांतिपूर्ण बनाएं। किसी भी प्रकार के सोशल मीडिया की अफवाह का शिकार ना बनें एवं इस प्रकार की कोई बात होती है तो तत्काल स्थानीय प्रशासन को सूचित करें।

एस कुमार, वैशाली, बिहार

दो हेलमेट खरीदना अनिवार्य हो

पुलिस प्रशासन चाहे कितना ही जुर्माना लगाए और सख्ती बरते लेकिन लोग सड़क सुरक्षा नियम-कायदे और दिशा-निर्देश का पालन नहीं करते। अक्सर इसकी कीमत भी चुकानी पड़ती है। हापुड़ में एक टैंकर से टक्कर के बाद मोटरसाइकिल सवार एक व्यक्ति एवं चार बच्चों की मौत बेहद दुखद घटना है। देश में ऐसी सैकड़ों दुर्घटना होती हैं, जहां लोग रोड सेफ्टी कानून का पालन नहीं करते। हमें समझना होगा कि मोटरसाइकिल केवल दो व्यक्तियों के लिए है। हापुड़ का घटनाक्रम हम सभी के लिए एक सबक है कि हम अकारण परिवार को मृत्यु का ग्रास न बनने दें। स्कूटर/मोटरसाइकिल सवार सावधानी बरतें और नियमों का पालन करें। अक्सर हमारे युवा धार्मिक जुलूस के समय सड़क पर मोटरसाइकिल से स्टंट करते हैं, जिसके कारण निर्दोष लोग भी मारे जाते हैं। देश में ऐसा कानून आना चाहिए जिसमें दोपहिया खरीदते समय दो हेलमेट खरीदना अनिवार्य हो।

वीरेन्द्र कुमार जाटव, दिल्ली

केवल सत्ता से नहीं बनेगी बात

1979 की इस्लामी क्रांति के बाद ईरान ने खुद को केवल एक राष्ट्र नहीं, बल्कि एक वैचारिक ध्रुव के रूप में प्रस्तुत किया-जहां शिया पहचान को धार्मिक आस्था से आगे बढ़ा कर राजनीतिक शक्ति में बदलने का प्रयास हुआ। इस वैचारिक ध्रुवीकरण ने पश्चिम एशिया की शक्ति-संरचना को गहराई से प्रभावित किया और सऊदी अरब जैसे सुन्नी प्रभावी देशों से वैचारिक टकराव को जन्म दिया। हाल में इस्राइल के साथ प्रत्यक्ष टकराव, अमेरिकी प्रतिबंधों की पुनरावृत्ति और वैश्विक मंच पर अलगाव ने ईरान को और अधिक आक्रामक रणनीति की ओर धकेला। शिया-सुन्नी एकता की जो कल्पना ईरान प्रस्तुत कर रहा है, वह विश्वास से अधिक संदेह को जन्म देती है। यदि ईरान को वास्तव में क्षेत्रीय स्थायित्व और व्यापक स्वीकार्यता प्राप्त करनी है, तो उसे आंतरिक सहिष्णुता, अल्पसंख्यक अधिकारों की रक्षा और लोकतांत्रिक संवाद की पुनर्स्थापना करनी होगी। केवल सत्ता और रणनीति के सहारे धार्मिक एकता संभव नहीं।

अवनीश कुमार गुप्ता, ई मेल से

letter.editorsahara@gmail.com

हमें गर्व है हम भारतीय हैं

राष्ट्रीय सहारा
सहारा इण्डिया मास कम्युनिकेशन के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक जिया कादरी द्वारा सहारा इंडिया मास कम्युनिकेशन प्रेस, सी-2,3, 4 सेक्टर-11, नोएडा में मुद्रित तथा तथा 1209-1210, बाराखंबा लेन, नवरंग हाउस, 21 के.जी. मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित।

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 18 अंक 119

विकास पर दें ध्यान

देश में इंटरनेट का प्रसार बढ़ रहा है और आर्टिफिशल इंटेलिजेंस तथा डीपफेक के इस्तेमाल में भी तेजी से इजाफा हो रहा है। ऐसे में फर्जी खबरों यानी फेक न्यूज के कारण सामाजिक व्यवस्था और लोकतांत्रिक मूल्यों के समक्ष उत्पन्न होने वाली चुनौतियां भी बढ़ रही हैं। उनसे निपटने के लिए हमें सावधानीपूर्वक संतुलन कायम करना होगा। अपेक्षाकृत तेजी से विकसित हो रहे तकनीकी परिदृश्य में तकनीकी रूप से पिछड़ी सरकारी मशीनरी का इस्तेमाल करना निश्चित तौर पर समस्याएं पैदा करेगा। ऐसे में यह आवश्यक है कि भारत में अधिकारी उठाए जाने वाले नियामकीय कदमों को लेकर सतर्क रहें। दुर्भाग्यवश इन दिनों कर्नाटक में यह सतर्कता नजर नहीं आ रही है। राज्य सरकार ने एक मसौदा विधेयक तैयार किया है जो फर्जी खबरों या अन्य दिक्कतदेह सामग्री तैयार करने पर सात वर्ष तक के कारावास की बात कहता है। यहां समस्या यह है कि फेक यानी 'फर्जी खबरों' की परिभाषा तय करने का काम एक विशेष समिति के हवाले कर दिया गया है जिसकी बात विधेयक में की गई है। इस कानून का इरादा समझा जा सकता है लेकिन यह इस बात का भी उदाहरण है कि कैसे कानून का अत्यधिक इस्तेमाल भी समस्याएं पैदा कर सकता है। कर्नाटक सरकार ने इस बात पर समुचित विचार नहीं किया कि इसका अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर क्या असर होगा।

विधेयक एक ऐसी समस्या को प्रदर्शित करता है जो किसी एक राज्य भर की नहीं है। देश में सभी स्तरों पर सरकारी अधिकारी बहुत हद तक अभिव्यक्ति की आजादी पर प्रतिबंध लगाने के काम में लगे हुए हैं। केंद्र सरकार ने कई अवसरों पर सूचना प्रौद्योगिकी नियमों को संशोधित किया है ताकि वह स्वयं को अधिक शक्ति संपन्न बना सके और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर अंकुश लगा सके। गत वर्ष सितंबर में बंबई उच्च न्यायालय ने उन बदलावों के एक पहलू को नकार दिया था जिनके जरिये सरकार एक 'फैक्ट चेक यूनिट' बना सकती थी जिसके तहत भारतीय इंटरनेट से कोई खबर हटाने का आदेश दिया जा सकता था।

कानून व्यवस्था की प्राथमिक जिम्मेदारी राज्य सरकारों की होती है और उन्होंने भी ऐसे तरीके तलाशने की तेजी दिखाई है जो उन्हें अभिव्यक्ति की आजादी पर अंकुश लगाने में मदद करें। कई राज्यों ने फैक्ट चेक यूनिट कायम की हैं परंतु कुछ राज्यों ने तो इससे भी आगे बढ़कर कदम उठाए हैं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र ने तथाकथित 'अर्बन नक्सल' के खिलाफ बिल प्रस्तावित किया है। इस शब्द का प्रयोग अक्सर वाम धड़े के असल चरमपंथियों के लिए नहीं (खुशकिस्मती से इन दिनों यह समस्या समाप्त हो रही है) बल्कि अकादमिक तंत्र में सत्ता से असहमत लोगों के लिए किया जा रहा है। ऐसे कानूनों से अलग भी राज्यों के अधिकारियों और स्थानीय स्तर के अधिकारियों में कानून-व्यवस्था के नाम पर इंटरनेट को पूरी तरह बंद करने को लेकर लगाव बढ़ता जा रहा है। कई बार तो एकदम निचले स्तर के अधिकारी भी ऐसे आदेश दे देते हैं।

विकास के क्षेत्र में बाधाओं की बात करें तो भारत की सबसे बड़ी दिक्कत अफसरशाही और नियामकीय क्षमता रही है। खासतौर पर राज्य स्तर पर। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि लगातार कम होती इस क्षमता को उन प्रणालियों की ओर मोड़ा जा रहा है जो देश में अभिव्यक्ति की आजादी को प्रतिबंधित या प्रभावित करने से संबंधित हैं। यह संवैधानिक अनिवार्यता का तो उल्लंघन है ही, देश की आबादी की विकास आकांक्षाओं के साथ भी धोखा है। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि देश की सरकारें इस मामले में पीछे हटें और अपने रुख को नए सिरे से परखें। अनुबंध प्रवर्तन में शिथिलता है और जांचों में देरी होती है। क्या फर्जी खबरों या 'खतरनाक' अभिव्यक्ति से निपटने के नाम पर नए आपराधिक मामलों और जांचों को जोड़ना आवश्यक और उचित है? केंद्र सरकार का कानूनी ढांचे में अपराधीकरण कम करने का इरादा सराहनीय है। इस सिद्धांत को केवल कानून तक लागू न रखकर सामान्य शासन में भी लागू किया जाना चाहिए।

बिनय सिन्हा

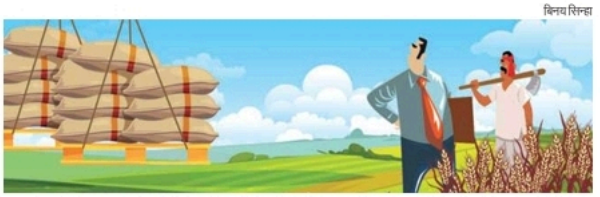

खाद्य शुल्कों में कटौती जोखिम भरा दांव

अमेरिका को बाजार पहुंच दिलाने की नीति आयोग की पहल भारत की खाद्य सुरक्षा को कैसे नुकसान पहुंचा सकती है। बता रहे अजय श्रीवास्तव

नीति आयोग द्वारा हाल ही में पेश एक प्रपत्र में अमेरिका से होने वाले कृषि आयात में शुल्क कटौती की अनुशंसा की गई है। इन उत्पादों में चावल, डेरी, पोल्ट्री, मक्का, सेब, बादाम और जीन संवर्द्धित सोया तक शामिल हैं। यह कटौती भारत-अमेरिका मुक्त व्यापार समझौते के तहत करने करने का प्रस्ताव है।

ये प्रस्ताव 'प्रमोटिंग इंडिया-यूएस एग्रीकल्चर ट्रेड अंडर द न्यू यूएस ट्रेड रिजीम' (अमेरिका की नई व्यापार व्यवस्था के अधीन भारत-अमेरिका कृषि व्यापार को बढ़ावा) नामक प्रपत्र में दिए गए हैं जो मई में प्रकाशित हुआ था। हम इसकी अहम अनुशंसाओं पर विचार करेंगे और यह भी कि देश की खाद्य सुरक्षा के लिए इनका क्या अर्थ होगा? शुरुआत करते हैं चावल से जो देश का एक प्रमुख खाद्यान्न है।

चावलः प्रपत्र अमेरिकी चावल पर आयात शुल्क समाप्त करने की बात कहता है। भारत पहले ही बहुत बड़ी मात्रा में चावल निर्यात करता है और इसलिए आयात से उसे कोई जोखिम नहीं। यह दलील तार्किक नजर आती है लेकिन यह अतीत की एक बड़ी गलती की अनदेखी कर देती है।

1960 और 1970 के दशक के आरंभ में भारत को खाद्यान्न की कमी का सामना करना पड़ा और अमेरिकी कानून पीएल-480 के तहत अमेरिका से खाद्यान्न आयात करना पड़ा। इस कानून के तहत अमेरिका का अतिरिक्त अन्न भारत जैसे देशों को बेचा या दान दिया जाता है। वैश्विक व्यापार वार्ताओं के अधीन भारत जो उस समय एक बड़ा खाद्यान्न आयातक था, अमेरिका के इस प्रस्ताव पर सहमत हो गया था कि वह चावल, गेहूं और दूध पाउडर पर शुल्क समाप्त कर देगा। यानी भारत ने भविष्य में इन वस्तुओं पर शुल्क बढ़ाने का अधिकार त्याग दिया।

बाद में हरित क्रांति ने देश के कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय इजाफा किया और 1990 के आरंभ में देश चावल और गेहूं के मामले में आत्मनिर्भर हो गया। भारतीय किसानों को अब सस्ते सब्सिडी वाले आयात से शुल्क संरक्षण चाहिए था लेकिन पुरानी गैट प्रतिबद्धता के कारण भारत शुल्क बढ़ाने में सक्षम नहीं था। इकलौता कानूनी विकल्प था गैट के अनुच्छेद 28 के तहत दोबारा बातचीत करना, जो भारत ने 1990 के दशक में किया।

बहरहाल, दोबारा वार्ता महंगी पड़ी। भारत को अन्य वस्तुओं मसलन मक्खन, चीज, सेब, खट्टे फलों और ऑलिव ऑयल पर शुल्क दर कम करनी पड़ी ताकि अमेरिका और यूरोपीय संघ सहित कारोबारी साझेदारों को राहत दिया जा सके। इसके बाद ऐसे उत्पादों से भारतीय बाजार पट गए और स्थानीय किसानों को इसका नुकसान हुआ। सबक यह है कि एक बार अगर कोई देश कम या शून्य शुल्क को कानूनी रूप से मान लेता है तो दोबारा लचीलापन हासिल करना मुश्किल होता है। नीति आयोग का प्रपत्र इसी बात की अनदेखी करता है।

वैश्विक अन्न कीमतों में उतार-चढ़ावः नीति आयोग का प्रपत्र वैश्विक अन्न कीमतों में उतार-चढ़ाव के जोखिम की भी अनदेखी करता है। उदाहरण के लिए 2014 से 2016 के बीच वैश्विक अन्न कीमतों में भारी गिरावट आई। गेहूं 160 डॉलर प्रति टन से नीचे आ गया और बहुत से अफ्रीकी किसानों को इसके कारोबार से बाहर होना पड़ा। अगर भारत शुल्क समाप्त कर देता है तो सब्सिडी वाला सस्ता अमेरिकी अनाज बाजार में भर जाएगा और भारतीय उपज बिकेगी ही नहीं। इससे किसान अगली फसल बोने के पहले सौ बार सोचेंगे। इससे हम आयात पर निर्भर हो जाएंगे।

अगर बाद में वैश्विक कीमतें बढ़ीं तो भारत को महंगा आयात करना होगा ठीक वैसे ही जैसे घाना और नाइजीरिया को 2005-08 और 2010-11 के दौरान करना पड़ा था जब गेहूं और मक्के की कीमत क्रमशः 130 फीसदी और 70 फीसदी बढ़ गई थी। ऐसे उतार-चढ़ाव ने कई अफ्रीकी देशों की खाद्य सुरक्षा नष्ट कर दी है। भारत को इससे बचना चाहिए। 10 करोड़ से अधिक छोटे किसानों के साथ हमें गेहूं और चावल की कीमतों पर शुल्क लागू रखना चाहिए ताकि किसान सुरक्षित रह सकें और खाद्य आपूर्ति स्थिर रहे।

चावल पर से टैरिफ हटाने से उन समूहों को लाभ होगा जो देश की खाद्य नीतियों पर हमलावर हैं। अमेरिकी चावल फेडरेशन ने भारत को डब्ल्यूटीओ में बार-बार चुनौती दी है और आरोप लगाया है कि उसने सब्सिडी के नियम तोड़े और अपने न्यूनतम समर्थन मूल्य कार्यक्रम और सरकारी खरीद कार्यक्रम के तहत कारोबार को बाधित किया है। अमेरिका के साथ शुल्क कम करने से भारत की खाद्य सुरक्षा व्यवस्था प्रभावित होगी जो किसानों और उपभोक्ताओं दोनों का संरक्षण करती है। खाद्य सुरक्षा को भूराजनीति, जलवायु परिवर्तन और बाजार आकार दे रहे हैं, ऐसे में भारत को सावधान रहना चाहिए।

डेरी और पोल्ट्रीः नीति आयोग का प्रपत्र कहता है कि भारत को अमेरिकी डेरी और पोल्ट्री उत्पादों पर शुल्क कम करना चाहिए और आयात को एसपीएस यानी सैनटरी ऐंड फाइटोसैनिटरी मानकों से विनियमित करना चाहिए। ये मानक खाद्य सुरक्षा और मानव, पशु और पादप स्वास्थ्य संरक्षण के लिहाज से डिजाइन किए गए हैं। अगर ऐसा किया गया तो एसपीएस के कमजोर उपायों से आयात को बल मिलेगा क्योंकि शुल्क की जगह एसपीएस को आसानी से चुनौती दी जा सकती है। अमेरिका लंबे समय से भारत के इस नियम का विरोध कर रहा है कि यहां आने वाला दूध ऐसे जानवरों का नहीं होना चाहिए जिन्हें मांस या रक्त आधारित भोजन दिया जाता है। इसके अलावा देश का एसपीएस प्रवर्तन मजबूत तकनीकी समर्थन पर आधारित नहीं है। ऐसे में डेरी और पोल्ट्री पर शुल्क समाप्त करना गलत होगा।

जीएम कॉर्न, सोया सीडः नीति आयोग का कहना है कि एथेनॉल मिश्रण के लिए अमेरिकी मक्के का आयात किया जाए। अभी भारत में यह प्रतिबंधित है। तर्क है कि ऐसा करने से देश की घरेलू खाद्य और चारा आपूर्ति में जीएम उत्पादों का प्रवेश रोका जा सकेगा। प्रपत्र में यह अनुशंसा भी की गई है कि जीएम सोयाबीन के बीजों को एक नियंत्रित मॉडल के अधीन आयात किया जाए जहां तटीय इलाकों में पिराई के बाद तेल को स्थानीय स्तर पर इस्तेमाल किया जाए और जीएम प्रभाव वाले सोयामील को निर्यात कर दिया जाए ताकि देश में फसलों या बीजों पर इसका कोई असर न हो।

बहरहाल, देश की बिखरी हुई आपूर्ति श्रृंखला और कमजोर एसपीएस प्रवर्तन ऐसे नियंत्रण को हकीकत से परे बनाता है। एक बार जीएम उत्पादों के देश में आने के बाद उनके स्थानीय कृषि में शामिल होने की आशंका रहेगी। इससे खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है, पर्यावरण को क्षति पहुंच सकती है और देश का निर्यात प्रभावित हो सकता है क्योंकि कई देश जीएम दूषण से बचते हैं।

अनुशंसाएंः भारत को अमेरिका के साथ चल रही वार्ता में कृषि शुल्क कम करने के पहले सावधानी बरतनी चाहिए। एक बार शुल्क कम करने के बाद उन्हें दोबारा बढ़ाना मुश्किल होगा। भले ही वैश्विक कीमतें गिरें या भारतीय किसानों को नुकसान हो। इससे भारत जोखिम में पड़ जाएगा। खासकर इसलिए क्योंकि अमेरिका और यूरोपीय संघ अपने किसानों को भारी रियायत देते हैं।

शुल्क दरों को लचीला बनाए रखना पुराना संरक्षणवाद नहीं है। यह खाद्य सुरक्षा बचाए रखने, ग्रामीण आय में सुधार और बाजार झटकों से प्रबंधन के लिए जरूरी है। बढ़ती खाद्य असुरक्षा, जलवायु जोखिम और अनिश्चित व्यापारिक गतिविधियों के बीच भारत को अपने किसानों और उपभोक्ताओं के बचाव की व्यवस्था करनी चाहिए।

भारत को राज्य सरकारों, किसान संगठनों और विशेषज्ञों के साथ खुली और पारदर्शी चर्चा जारी रखनी चाहिए। उसके बाद ही मुक्त व्यापार समझौते में ऐसे निर्णय पर पहुंचना चाहिए। देश की करीब 70 करोड़ आबादी आज भी खेती पर निर्भर है। यह केवल आजीविका नहीं है बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था और देश की खाद्य व्यवस्था की रीढ़ भी है।

(लेखक ग्लोबल ट्रेड रिसर्च इनीशिएटिव के संस्थापक हैं)

कर्नाटक की राजनीति और डीके शिवकुमार

सियासी हलचल

आदिति फडणीस

समय रहते अपनी सेवानिवृत्ति घोषित करना क्या हमेशा बेहतर रहता है? कारोबारी जगत में इससे अपनी उत्तराधिकार योजना तैयार करने में मदद मिल सकती है लेकिन राजनीति में शायद ऐसा नहीं होता। यह संभव है कि कर्नाटक के मुख्यमंत्री सिद्धरमैया द्वारा कर्नाटक में 2023 के चुनावों में यह कहना कि 'यह मेरा आखिरी चुनाव है' एक रणनीति के रूप में उनके पक्ष में काम कर गया हो। परंतु 224 सदस्यीय राज्य विधान सभा में 135 (उपचुनाव जीतने के बाद 137) सीटों पर जीत पाने और 1989 के बाद के कांग्रेस के ऐतिहासिक प्रदर्शन के बावजूद अगर राज्य सरकार के कामकाज को देखें तो आप शायद नहीं मानेंगे कि यह सिद्धरमैया के लिए कारगर रहा है।

देश के राजनीतिक इतिहास में ऐसी किसी दूसरी घटना को याद करना मुश्किल है जहां एक उपमुख्यमंत्री ने सार्वजनिक रूप से अपने समर्थकों से कहा हो कि उसके पास मुख्यमंत्री को पद पर बने रहने देने के सिवा कोई विकल्प नहीं है। डीके शिवकुमार ने इस सप्ताह के आरंभ में ऐसा ही किया। सरकार और पार्टी की प्राथमिक चिंताओं में शासन संबंधी पहलें या अधोसंरचना निर्माण नहीं बल्कि सिद्धरमैया का उत्तराधिकारी तय करना सबसे आगे नजर आ रहा है।

इसमें कई बातें शामिल हैं, जिनमें पार्टी से बाहर के संबंध भी शामिल हैं। पूर्व मुख्यमंत्री बीएस येदियुरप्पा और सिद्धरमैया के बीच के रिश्ते काफी जटिल हैं। इनकी कई परतें हैं। सार्वजनिक तौर पर देखा जाए तो दोनों एक दूसरे से उलझते नजर आते हैं और यही उम्मीद भी की जानी चाहिए। परंतु येदियुरप्पा के 78वें जन्मदिन के उत्सव में भाजपा को प्रदेश में सत्ता में लाने में उनकी भूमिका को याद करते हुए सिद्धरमैया ने कहा, 'बहुत कम नेता राज्य की नब्ज को जानते हैं और येदियुरप्पा उनमें से एक हैं।' ऐसे अनेक अवसर रहे हैं जहां दोनों ने अपनी-अपनी पार्टियों के बीच प्रतिद्वंद्विता के बीच भी एक दूसरे की सहायता की।

फिलहाल सिद्धरमैया के सामने सबसे बड़ी चुनौती येदियुरप्पा (जो खुद भाजपा में दिक्कतों से जूझ रहे हैं) नहीं बल्कि डीके शिवकुमार हैं। सिद्धरमैया जहां समाजवादी विचारधारा से कांग्रेस में आए वहीं शिवकुमार हमेशा से कांग्रेस में ही रहे हैं। डीके शिवकुमार ने कॉलेज के दिनों में युवा कांग्रेस की सदस्यता ली थी। वह 1983 से 1985 के बीच युवा कांग्रेस के महासचिव भी रहे। वह पहली बार 1987 में चुनाव जीतकर जिला पंचायत सदस्य बने थे। वह ताकतवर वोक्कालिगा जाति से आते हैं और 1985 में पहली बार उन्हें सथनूर से इस जाति के दिग्गज नेता एच डी देवेगौड़ा के खिलाफ चुनाव लड़ने के लिए चुना गया था। तब उनकी उम्र 30 वर्ष से कम थी।

आश्चर्य नहीं कि उस चुनाव में उन्हें हार का सामना करना पड़ा। हालांकि, हार का अंतर बहुत अधिक नहीं था। यह अपने आप में मामूली कामयाबी नहीं थी क्योंकि देवेगौड़ा उस समय रामकृष्ण हेगड़े की सरकार में वरिष्ठ मंत्री थे।

परंतु देवेगौड़ा दो निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव मैदान में उतरे थे और उन्होंने सथनूर सीट खाली कर दी थी। उपचुनाव में शिवकुमार ने वहां से जीत हासिल कर ली। इसने देवेगौड़ा परिवार के साथ उनके संघर्ष को जन्म दिया जिसका रूप और आकार बदलता रहा लेकिन बरकरार रहा। यानी लड़ाई बरकरार रही। शिवकुमार ने 1989 के लोक सभा चुनाव में कनकपुरा से देवेगौड़ा को चुनौती दी लेकिन उन्हें फिर हार का सामना करना पड़ा। यह वह दौर था जब देवेगौड़ा सत्ता के शिखर पर थे। इसके बावजूद उन्होंने विधान सभा का भी चुनाव लड़ा और उसमें जीते (1989 में राज्य में लोक सभा और विधान सभा के चुनाव एक साथ हुए थे)।

परंतु इन हारों के बावजूद शिवकुमार ने बेंगलूरु से लगे हुए ग्रामीण इलाकों में अपना प्रभाव बनाना शुरू कर दिया था। लगभग इसी समय जमीन की कीमतें भी बढ़ रही थीं। शिवकुमार ने खनन तथा उससे संलग्न कारोबारों में भी निवेश किया। 1989 का विधान सभा चुनाव उन्होंने निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में लड़ा और चुनाव जीत गए।

दो साल बाद केवल 31 साल की उम्र में वह राज्य के सबसे युवा मंत्री बने। 1991 से 1992 तक वह एस बंगारप्पा सरकार में मंत्री पद पर रहे। परंतु अब तक उनके पास पर्याप्त संसाधन एकत्रित हो चुके थे। रिकॉर्ड बताते हैं कि 2023 में उनके पास 1,400 करोड़ रुपये की संपत्ति थी। समय के साथ उनका पैसा और संरक्षण दोनों बढ़े। शिवकुमार ने व्यक्तिगत संपत्ति का इस्तेमाल करके राजनीतिक पूंजी बनाई। ये कहानियां सबको पता हैं।

2002 में जब महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री और कांग्रेस नेता स्वर्गीय विलासराव देशमुख सब कुछ होते हुए भी अविश्वास प्रस्ताव में सरकार लगभग गंवाने वाले थे तब कर्नाटक के शहरी विकास मंत्री शिवकुमार ने विधायकों को एकत्रित करके रिसॉर्ट में रखा और उन्हें मतदान के दिन मुंबई ले गए।

स्वर्गीय अहमद पटेल ने 2017 में गुजरात से राज्य सभा सीट जीती और सार्वजनिक रूप से शिवकुमार के प्रति आभार प्रकट किया जिन्होंने गुजरात के 44 विधायकों को 'सुरक्षित' रखा।

परंतु जहां पैसे से बहुत सारी चीजें खरीदी जा सकती हैं वहीं इससे हमेशा नेतृत्व नहीं खरीदा जा सकता है। कर्नाटक की राजनीति पर नजर रखने वाले कहते हैं कि जहां शिवकुमार के पास राजनीतिक प्रभाव है वहीं सिद्धरमैया के पास विधायकों के बीच समर्थन है। इसकी वजह से साल 2023 में चुनाव परिणाम के बाद राज्य में जबरदस्त खेमेबाजी हुई और इसकी वजह से सरकार गठन में देरी हुई। यह दोनों नेताओं के बीच शुरू से ही चल रही खींचतान को दर्शाता है।

राज्य की राजनीतिक परंपरा से देखें तो 2028 में अगले विधान सभा चुनाव में विपक्ष की सरकार बन सकती है। अगर ऐसा होता है तो शिवकुमार को 2033 तक प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है।

यही वजह है कि कांग्रेस के कार्यकाल के बीच में ही ऐसे हालात बन रहे हैं। भविष्य में और अधिक बेचैनी नजर आ सकती है।

आपका पक्ष

पहाड़ी क्षेत्रों मे भूस्खलन से सुरक्षा के बंदोबस्त मजबूत हों

पहाड़ी इलाकों में आपदा से सुरक्षा के बंदोबस्त अभी से प्रारंभ कर देना चाहिए। जोशीमठ क्षेत्र में आई दरारें भविष्य में बड़ी आपदा का संकेत देती हैं। इस स्थल पर लोगों को भी फिलहाल सावधानी बरतनी चाहिए। पहाड़ी इलाकों में बरसात के मौसम से पहले ही जहां जरूरत हो और भूस्खलन की आशंका हो वहां सुधार किया जाना चाहिए ताकि बादल फटने से भारी बारिश होने पर कम से कम हानि हो। इसके लिए सभी प्रदेशों के पहाड़ी क्षेत्रों में जहां सबसे अधिक वर्षा होती है वहां पर अवरोधी संरचनाओं तथा अन्य कोशिशों के जरिये प्राकृतिक आपदाओं को सहने वाला क्षेत्र बनाया जाना चाहिए। इससे प्राकृतिक आपदा से पहले सुरक्षा प्रबंधन से रहवासी सुरक्षित महसूस करेंगे। इसके अलावा आम लोगों को भी बारिश के दौरान पहाड़ी इलाकों में पर्यटन के लिहाज से जाने से बचना चाहिए। सरकार को भी आमलोगों को इसके प्रति जागरूक करने की जरूरत है। माना कि राज्य की आमदनी के लिए पर्यटन एक बढ़िया स्रोत माना जाता है मगर लोगों की जान जोखिम में डालना भी सही नहीं माना जाएगा। राज्य और केंद्र सरकारों को इसके लिए खास मुहीम चलाने की जरूरत है, जिससे आम लोग जागरूक हों बरसात के मौसम में पहाड़ी इलाकों में जाने से बचें।

संजय वर्मा 'दृष्टि', मनावर

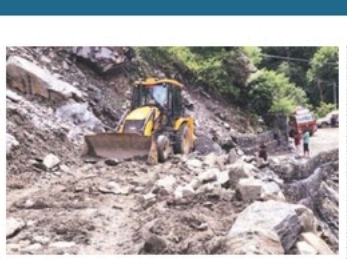

बरसात के दौरान पहाड़ी इलाकों में आए दिन भूस्खलन की घटनाएं होती हैं। इससे निपटने के लिए सरकार को गंभीरता से विचार करना होगा

नवाचार की राह में चुनौतियां

केंद्र सरकार द्वारा स्वीकृत शोध, विकास एवं नवाचार (आरडीआई) योजना देश में नवाचार को प्रोत्साहित करने की दिशा में एक सकारात्मक पहल है। आज हमारे देश की प्रगति में और साल 2047 तक इसके विकसित बनने की दिशा में नवाचार को अपनाना काफी जरूरी हो गया है। आज देश के युवाओं को नवाचार के बारे में जरूरी जानकारियां देना भी काफी अहम हो गया है। सरकार द्वारा शुरू की गई यह योजना विशेष रूप से कम ब्याज दर पर दीर्घकालिक वित्तीय सहायता के माध्यम से निजी निवेश को शोध क्षेत्र में आकर्षित करने का प्रयास करती है। दो स्तरीय संरचना में नैशनल रिसर्च फाउंडेशन (एनआरएफ) द्वारा 1 लाख करोड़ रुपये का कोष प्रबंधित किया जाएगा, जो निजी क्षेत्र की रणनीतिक और नवोन्मेषी परियोजनाओं में निवेश के लिए माध्यम बनेगा। भले ही यह एक सराहनीय शुरुआत है, लेकिन भारत की चुनौतियां बड़ी हैं। फिलहाल हमारा देश अपने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का महज 0.7 फीसदी हिस्सा ही शोध व विकास कार्यों पर खर्च करता है, जबकि पड़ोसी देश चीन व दक्षिण कोरिया में इससे कई गुना अधिक खर्च किया जाता है। तकनीकी स्नातकों की पर्याप्त संख्या के बावजूद उनका कौशल या तो विदेश चला जाता है या देश में बेकार रह जाता है। यही कारण है कि भारत वैश्विक नवाचार सूचकांक में 39वें स्थान पर है। आरडीआई योजना को डीएआरपीए (अमेरिका) और एमआईटीआई (जापान) जैसे सशक्त संस्थानों की तरह प्रभावी बनाना होगा तभी यह भारत के नवाचार तंत्र को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में खड़ा कर पाएगी।

अमृतलाल मारू 'रवि', इंदौर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो - पीटीआई

राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने शुक्रवार को राष्ट्रपति भवन में भारतीय सेना द्वारा आयोजित एशिया के सबसे पुराने फुटबॉल टूर्नामेंट डूरंड कप की ट्रॉफियों का अनावरण किया। समारोह में चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ जनरल अनिल चौहान, थल सेना के प्रमुख जनरल उपेंद्र द्विवेदी, नौसेना प्रमुख एडमिरल दिनेश के त्रिपाठी और वायु सेना प्रमुख एयर चीफ मार्शल अमर प्रीत सिंह भी मौजूद थे।

हिन्दुस्तान
1936

जन्मभूमि पर सावधान

श्रीकृष्ण जन्मभूमि-शाही ईदगाह भूमि विवाद में एक नया रुख महत्वपूर्ण और विचारणीय है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने शुक्रवार को जन्मभूमि पक्ष के एक आवेदन को खारिज कर दिया है। आवेदन में गुहार लगाई गई थी कि मामले में सुनवाई के दौरान 'शाही ईदगाह मस्जिद' शब्द की जगह 'विवादित ढांचा' शब्द का इस्तेमाल किया जाए। अगर यह शाब्दिक बदलाव किया जाता, तो एक तरह से यह इस विवाद पर निर्णायक फैसले जैसा होता। सुनवाई पूरी होने से पहले ही फैसले की एक दशा-दिशा तय हो जाती। विस्तार से समझें, तो आवेदन करने वाले अधिवक्ता द्वारा दायर हलफनामे में यह अनुरोध किया गया था कि अदालत अपने स्टेनोग्राफर और कर्मचारियों को औरंगजेब-युग की मस्जिद का नाम लेने के बजाय विवादित ढांचा शब्द का उपयोग करने के निर्देश जारी करे। नए नामकरण की यह कोशिश उच्च न्यायालय में अगर नाकाम हुई है, तो कोई अचरज नहीं। यह नामकरण पूरे मुकदमे को प्रभावित करता, अतः अदालत ने सही फैसला किया है। श्रीकृष्ण जन्मभूमि-शाही ईदगाह भूमि विवाद पर जो भी फैसला अंतिम रूप से आएगा, वह बहुत प्रभावी होगा, अतः ऐसे किसी पुख्ता फैसले तक पहुंचते हुए पूरी सावधानी से आगे बढ़ना चाहिए।

नामकरण या नाम परिवर्तन की ऐसी कोशिश पर पहले भी उचित आपत्ति जताई गई थी। अब जब अदालत ने अपना रुख स्पष्ट कर दिया है, तब जन्मभूमि पक्ष को छोटे-छोटे फैसले कराने की कोशिश करने के बजाय बड़े फैसले तक पहुंचने की जल्दी दिखानी चाहिए। यह विवाद जितनी जल्दी सुलझ जाए, उतना अच्छा है। बताया जाता है कि इस विवाद में पर्याप्त दस्तावेज या सुबूत मौजूद हैं, जिनका अदालत में परीक्षण होना है। निस्संदेह, पूरे परीक्षण और विचार के बाद ही कोई फैसला आएगा। जन्मभूमि पक्ष के याचिकाकर्ताओं का यह दावा है कि शाही ईदगाह मस्जिद भगवान कृष्ण के जन्मस्थान पर स्थित है, अतः जन्मभूमि पक्ष को भूमि पर कब्जा दिया जाए। मस्जिद के ढांचे को हटाया जाए, मूल मंदिर का निर्माण हो, वहां मुस्लिम मजहबी गतिविधियों पर रोक लगाई जाए। यह याद रखने योग्य बात है कि जन्मभूमि पक्ष की ओर से करीब 18 मुकदमे दायर हैं। इनकी सुनवाई यथावत जारी रहेगी। नामकरण संबंधी आवेदन के खारिज होने का कोई असर मूल मुकदमों पर नहीं पड़ेगा। अब दोनों ही पक्षों को पूरे संयम का परिचय देना चाहिए। अदालत का ताजा रुख न किसी के लिए बड़ी हार है और न किसी के लिए बड़ी जीत।

ईदगाह व जन्मभूमि, दोनों ही पक्षों को पूरे संयम का परिचय देना चाहिए। नामकरण संबंधी आवेदन के खारिज होने का कोई असर मूल मुकदमों पर नहीं पड़ेगा।

महत्वपूर्ण बात यह है कि जन्मभूमि के पक्ष में दायर याचिकाओं को अदालत ने सुनने लायक माना है। पहले इन याचिकाओं को ईदगाह पक्ष ने चुनौती दी थी, पर अदालत ने चुनौतियों को खारिज कर दिया था। पिछले वर्ष 1 अगस्त को उच्च न्यायालय ने वक्फ अधिनियम, पूजा स्थल अधिनियम, 1991 और अन्य कानूनों के आधार पर ईदगाह पक्ष की आपत्तियों को खारिज करते हुए जन्मभूमि पक्ष द्वारा दायर याचिकाओं को सुनवाई योग्य माना था। अब जब सुनवाई आगे बढ़ गई है, तब ऐसी सावधानी के साथ आगे बढ़ना चाहिए कि कोई अनावश्यक विवाद या अड़चन न पैदा होने पाएं। एक बड़ी चिंता इस विवाद में राजनीति को लेकर है। अगर राजनीति होगी, तो अंतिम फैसले में अनावश्यक रूप से समय लगेगा। साथ ही, अशांति की आशंका भी बढ़ेगी। सुनवाई कर रही अदालत को यह सुनिश्चित करते हुए आगे बढ़ना चाहिए कि कोई भी पक्ष कानून से परे कोई कदम न उठाए।

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले 05 जुलाई, 1950

अन्न नियन्त्रण

वायु और जल के बाद अन्न मनुष्य जीवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक पदार्थ है। अमीर अन्न के बिना भी काम चला सकते हैं, किन्तु साधारण आदमियों का काम अन्न के बिना नहीं चल सकता। जब आदमी को उसकी आवश्यकतानुसार अन्न नहीं मिलता, तो वह सबसे ज्यादा परेशानी अनुभव करता है। वह चोरबाजारी करके भी अपनी अन्न की आवश्यकता पूरी करने की कोशिश करता है। जब भी राशन में सड़ा-गला, कूड़े-कर्कट वाला अन्न मिलता है तो गृहदेवियां कुपित हो उठती हैं और अन्न की व्यवस्था के लिए जिम्मेदार सरकार को बुरी तरह कोसती हैं। लोगों की अन्न की आवश्यकता को पूरा करना सरकार अपना कर्तव्य मानती है और यदि कोई आदमी अन्न के अभाव में भूखों मर जाये, तो इसे सरकार के लिए बड़े भारी कलंक की बात समझी जाती है। जब बंगाल में अन्न के अभाव में बेशुमार लोग भूखों मरे थे, तो तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की दुनिया भर में बेहद बदनामी हुई थी। जो सरकार समाज में शांति और व्यवस्था कायम रखना चाहती है, वह लोगों में अनाज के वितरण की समुचित व्यवस्था किये बिना नहीं रह सकती। हमारी सरकार ने लोगों के प्रति अपनी प्रारंभिक जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए ही अन्न के संग्रह और वितरण पर नियंत्रण किया हुआ है और इस काम के लिए नियुक्त कर्मचारियों पर 9.5 करोड़ रुपये व्यय कर रही है। विदेशों से महंगे भाव अन्न मंगवाकर लोगों को मुहैया करने में सरकार ने जो करोड़ों रुपये का घाटा उठाया है, वह तो अलग ही है।

एक समय था जब अन्न पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं था, उपभोक्ता व्यापारियों से चाहे जितना अन्न खरीद सकते थे। न व्यापारियों पर कोई अंकुश था और न उपभोक्ताओं पर। अन्न की कीमतों में भी भारी उतार-चढ़ाव नहीं होता था और वे प्रायः स्थिर ही रहती थीं। यह सामान्य स्थिति थी, किन्तु गत महायुद्ध ने इस स्थिति को एकदम बदल दिया। युद्ध की जरूरतों को पूरा करने के लिए देश से इतना अन्न बाहर गया कि देश में उसकी कमी पड़ गयी और सरकार को अन्न के वितरण पर नियन्त्रण लगाना पड़ा। अन्न का समान वितरण तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक अन्न-संग्रह की भी साथ ही व्यवस्था न की जाये। अन्न पर नियन्त्रण का यह सिलसिला अब तक जारी है।

कल 6 जुलाई को 14वें दलाई लामा धर्मशाला, भारत में अपना 90वां जन्मदिन मना रहे हैं। साल 1959 में वह मजबूर होकर हजारों तिब्बतियों के साथ भारत आए थे और तब लोकसभा में उन्हें लेकर अनेक बार बहस हुई थी। उनके तिब्बत के लिए भी अनेक बार चर्चा हुई थी। तब से ब्रह्मपुत्र में काफी पानी बह गया है, लेकिन चर्चा आज भी थमी नहीं है। पेश है 8 मई, 1959 को लोकसभा में हुई ऐतिहासिक बहस, जो आज भी प्रासंगिक है।

आमने-सामने

तिब्बती गुरु पर लगे बंधन ढीले कीजिए

यहां स्कैन करें

अटल बिहारी वाजपेयी | तत्कालीन सांसद

- तिब्बत चीन का अंदरूनी मामला नहीं है। चीन बंधा हुआ है तिब्बत की स्वायत्तता का आदर करने के लिए।
- दलाई लामा भारत आए हैं; वह अपने देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, उन्हें यहां रहते हुए इसका अधिकार होना चाहिए।

उपाध्यक्ष महोदय, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि तिब्बत की घटनाओं के कारण भारत और चीन के संबंधों में तनाव पैदा हो गया है। लेकिन इस तनाव का उत्तरदायित्व भारत के ऊपर नहीं है।

...तिब्बत पर किसी देश की गुलामी नहीं थी। भारत तिब्बत का निकटतम पड़ोसी है। अतीत के इतिहास में अगर हम चाहते, तो तिब्बत को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न कर सकते थे, लेकिन आज जो चीन के नेता भारत पर विस्तारवादी होने का आरोप लगाते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि हमने कभी भी तिब्बत को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न नहीं किया। तिब्बत छोटा है। लेकिन हमने उसके पृथक अस्तित्व का समादर किया। हमने तिब्बत की स्वतंत्रता का सम्मान किया, और हम आशा करते थे कि चीन भी ऐसा ही करेगा। लेकिन कम्युनिस्टों के तरीके अलग होते हैं। उनके शब्दों की परिभाषाएं अलग होती हैं। जब वे गुलाम बनाना चाहते हैं, तो कहते हैं कि हम मुक्त करने जा रहे हैं, आज जब वे दमन कर रहे हैं, तो कहते हैं कि हम सुधार करने जा रहे हैं। अगर कहीं सुधार करना है, तो जिन्हें सुधरा बनाना है, उनमें सुधार की प्रवृत्ति पैदा होनी चाहिए। सुधार ऊपर से नहीं लादा जा सकता। लेकिन तिब्बत में जो कुछ हो रहा है, वह सुधार नहीं है।...

चीन ने केवल तिब्बत के साथ हुए समझौते को नहीं तोड़ा, मगर उस समझौते की पृष्ठभूमि में भारत के साथ जो समझौता हुआ, उसका भी उल्लंघन किया। पंचशील की घोषणा कहां गई?... तिब्बत चीन का अंदरूनी मामला नहीं है। चीन बंधा हुआ है तिब्बत की स्वायत्तता का समादर करने के लिए, तिब्बत के अंदरूनी मामलों में दखल न देने के लिए। लेकिन वह समझौता टूट गया और मैं समझता हूं कि अब भारत को भी-भारत सरकार को भी अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए। समझौते दोनों तरफ से चलते हैं, दोनों तरफ से पालन होते हैं।

...आज नहीं तो कल तिब्बत की जनता अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करके रहेगी। मगर प्रश्न यह है कि हम उसके लिए क्या कर सकते हैं? मैंने निवेदन किया कि हमने 1950 में गलती की। अब हमें उसका दंड भुगतना पड़ रहा है। लेकिन समय है प्रायश्चित करने का, गलती को पहचानने का और मैं प्रधानमंत्री जी से इस बात की आशा करता हूं कि वह इस अवसर पर देश की जनता का सही प्रतिनिधित्व करेंगे। मुट्ठी भर हमारे मित्रों को छोड़कर सारा भारत इस प्रश्न पर एकमत है कि तिब्बत में जो कुछ हो रहा है, वह नहीं होना चाहिए।

...मुझे तो लगता है, कम्युनिस्ट पद्धति और स्वायत्तता, दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। कम्युनिस्ट राज्य में स्वायत्तता नहीं हो सकती। माओ-त्से-तुंग ने 1930 में कहा था कि हमने ऐसा संविधान बनाया है कि अगर कोई हमसे बाहर जाना चाहेगा, तो बाहर जा सकेगा। तिब्बती तो बाहर जाने की बात नहीं करते थे। वे तो अपना पृथक अस्तित्व रखना चाहते थे, मगर उन्हें इसकी भी इजाजत नहीं दी गई। उन्होंने यह भी कहा कि हम ऐसे फूल को खिलता हुआ देखना चाहते हैं, जिसमें हजारों पंखुड़ियां होंगी। हजारों की तो बात अलग रही, तिब्बत की कोमल कली को भी कुचला जा रहा है। हमने कभी तिब्बत को भारत में मिलाने का प्रयत्न नहीं किया। हमने जहां चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने की वकालत की थी, वहां हम तिब्बत को भी स्थान देने की वकालत कर सकते थे।...

हम पर तो चीन की शनि दृष्टि दिखाई देती है। चीन के नक्शे में हमारा प्रदेश बताया गया है। चीन के कम्युनिस्टों ने च्यांग-काई-शेक को तो निकाल दिया, मगर उनके नक्शों को रख लिया। अगर वे चाहते, तो नक्शों को भी निकाल सकते थे। और हमारे कम्युनिस्ट दोस्तों ने तो ये नक्शे देखे ही नहीं हैं। लेकिन यह चीन का अप्रत्यक्ष आक्रमण है भारत के ऊपर। उत्तर प्रदेश के दो स्थानों पर चीनी कब्जा जमाकर बैठे हैं। ये घटनाएं आने वाले संकट की ओर संकेत करती हैं। हमें आतंकित होने की आवश्यकता नहीं है, मगर हमें दृढ़ नीति अपनानी चाहिए।

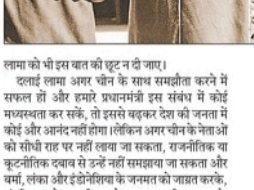

दलाई लामा भारत में आए हैं; वह अपने देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जिसके कारण उनको अपना देश छोड़कर भारत में आना पड़ा है। मैं चाहता हूं कि उन्हें अपने देश की स्वतंत्रता की लड़ाई भारत में चलाने का अधिकार होना चाहिए। उनके ऊपर जो बंधन लगाए गए हैं, वे यद्यपि सुरक्षा के लिए हैं, लेकिन उन बंधनों को ढीला करने की आवश्यकता है। अगर हमारे देशभक्त अंग्रेजी राज के दिनों में दूसरे देशों में जाकर भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न कर सकते थे और हमारी आंखों में सम्मान का स्थान प्राप्त कर सकते थे, तो कोई कारण नहीं है कि दलाई लामा को भी इस बात की छूट न दी जाए।

दलाई लामा अगर चीन के साथ समझौता करने में सफल हों और हमारे प्रधानमंत्री इस संबंध में कोई मध्यस्थता कर सकें, तो इससे बढ़कर देश की जनता में कोई और आनंद नहीं होगा। लेकिन अगर चीन के नेताओं को सीधी राह पर नहीं लाया जा सकता, राजनीतिक या कूटनीतिक दबाव से उन्हें नहीं समझाया जा सकता और बर्मा, लंका और इंडोनेशिया के जनमत को जाग्रत करके, संगठित करके प्रभावी रूप से उसका प्रकटीकरण करके चीन पर असर नहीं डाला जा सकता, तो भारत के सामने इसके सिवा कोई विकल्प नहीं रहेगा कि हम दलाई लामा को छूट दे दें कि वह अपने देश की आजादी के लिए प्रयत्न करें और भारत के जो नौजवान तिब्बत की स्वतंत्रता को अमूल्य समझते हैं... उन्हें भी कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता दी जाए।

...हम चीन से भी आशा करें कि वह साम्राज्यवाद की बातें न करे। यह नया साम्राज्यवाद है। यह क्रांति के आवरण में आता है, यह इंकलाब की पोशाक पहनकर आता है, यह नई व्यवस्था का नारा लगाता हुआ आता है, मगर है यह उपनिवेशवाद। अतीत के इतिहास में हम गोरों के साम्राज्य से लड़ते रहे, लेकिन अब यह पीलों का साम्राज्यवाद भी प्रकट हो रहा है विश्व की छत पर। हमें दृढ़ता के साथ उसका भी मुकाबला करना चाहिए।

(लोकसभा में दिए गए उद्बोधन के अंश)

हमने दलाई लामा पर प्रतिबंध नहीं लगाए

यहां स्कैन करें

जवाहरलाल नेहरू | तत्कालीन प्रधानमंत्री

- इसमें कोई शक नहीं कि जब तिब्बत के पास शक्ति थी, तब समय-समय पर उसने इसका विरोध किया।
- यह सुझाव कि हम उन्हें भारत में रहते हुए संघर्ष की छूट दे दें, जिसकी मांग दलाई लामा तक ने नहीं की है, बेतुका है।

उपाध्यक्ष महोदय, गत कुछ सप्ताहों में इस सभा तथा उस सभा में भी तिब्बत में हुई घटनाओं का मामला कई बार उठा है।... अभी मुझसे पहले जिन माननीय सदस्य ने अपना भाषण दिया है, उन्होंने हमारी नीति के उन मूल सिद्धांतों को चुनौती दी है, जिसे इस सभा ने और संपूर्ण देश ने स्वीकार किया है।... या तो उन्होंने कभी भी उन मूल सिद्धांतों में विश्वास ही नहीं किया या फिर तिब्बत में हुई घटनाओं के कारण उनका मत बदल गया है।

...मैं सामान्य रूप से बता देना चाहता हूं कि हमने दलाई लामा पर प्रतिबंध नहीं लगाए हैं, सिवाय समझदारी और औचित्य की मर्यादा के, और इसके निर्णायक वह स्वयं हैं। पर माननीय सदस्य का यह सुझाव देना कि हम उन्हें भारत में एक आंदोलन संगठित करने की छूट दे दें, जिसका सुझाव स्वयं दलाई लामा तक ने नहीं दिया है, और माननीय सदस्य तथा उनके दल को इस आंदोलन में भाग लेने की अनुमति दे दें, यह एक बड़ी अजीब और बेतुकी सी बात है। ...विश्व में, भारत में अथवा चीन में या कहीं भी तथ्यों से इसका कोई संबंध अथवा मेल नहीं है।

उन्होंने 1954 के करार का भी जिक्र किया, जो तिब्बत के संबंध में चीन के साथ हुआ था। उन्होंने कहा कि हमें ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए था। मैं नहीं समझता कि उनके इस कथन या दृष्टिकोण का क्या मतलब है? उनके कहने का क्या मतलब है, वह साफ नहीं है, शायद सिवाय इस बात के कि वह चाहते हैं कि हम रामलीला मैदान में सार्वजनिक बैठक बुलाएं और उसमें भाषण दें। ...हमें केवल अपनी मूल नीति तथा सिद्धांतों का ही ध्यान नहीं रखना है, बल्कि ठोस वास्तविकताओं का भी।

मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि तिब्बत के संबंध में चीन के साथ हमने जो करार किया था, वह एक ठीक करार था। ... माननीय सदस्य का यह कहना भी सही नहीं है कि उस करार का उल्लंघन हुआ है। हो सकता है कि उनके ख्याल से या किसी अन्य व्यक्ति के ख्याल से, उस करार की कुछ बातों या भावनाओं का पालन न हुआ हो। पर उस करार के भंग हो जाने का कोई सवाल नहीं है।

...मैं नहीं जानता कि कितने माननीय सदस्य तिब्बत, चीन, मंगोलिया, भूटान, सिक्किम और नेपाल के पिछले कुछ वर्षों के इतिहास या उसकी पृष्ठभूमि से परिचित हैं। मैं नहीं जानता हूं कि जिन माननीय सदस्य ने अभी भाषण दिया है, वह इसके बारे में भी कुछ भी जानते हैं या नहीं। मैं इसके बारे में कुछ जानता हूं और मैंने इस संबंध में अनेक पुस्तकें, रिपोर्ट तथा समाचारपत्र भी पढ़े हैं। पिछले छह या सात सौ वर्षों के इतिहास में आप देखेंगे कि चंगेज खां ने तिब्बत पर आक्रमण किया और कुब्लाई खां ने भी एक ढंग से तिब्बत पर कब्जा किया, पर कुबलाई खां उस समय के दलाई लामा को अपना आध्यात्मिक गुरु मानता था। अतः आप देखेंगे कि एक विचित्र ढंग से सारा इतिहास बना है। काफी समय तक चीन और तिब्बत के बड़े अजीब संबंध रहे हैं- एक प्रकार से मंगोल काल से ही चीन के लोग तिब्बत के लोगों से कुछ घृणा सी करते आए हैं। यही नहीं, चीन के लोग अपने देश को छोड़कर लगभग सभी देशों से घृणा करते आए हैं। ये अपने को दिव्य जाति का, महान देश समझते हैं, यही हालत तांग राजवंश, मिंग राजवंश तथा मन्चू राजवंश में रही। आप देखेंगे कि काफी समय तक चीन और तिब्बत के संबंध संपूर्ण प्रभुता या अर्द्ध स्वतंत्रता के रहे हैं; इतिहास के इस घटना-चक्र में बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जाकर मन्चू राजवंश ने तिब्बत पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया। मन्चू राजवंश के पतन के समय भी तिब्बत पर उसका काफी प्रभाव था।

आज से 40 या 50 वर्ष पूर्व जब मन्चू राजवंश का पतन हुआ, तो तिब्बत पर चीनियों का प्रभाव कम हो गया। यद्यपि यह प्रभाव कम हो गया, पर उसके बाद से अब तक जिन लोगों के अधीन चीन रहा, चाहे वह सम्राट हो, या प्रेसीडेंट येवान शिह काई हों या च्यांग-काई-शेक का शासनकाल रहा हो या चीन की जनवादी सरकार हो, सभी ने अपने को तिब्बत का स्वामी समझा। इसमें कोई शक नहीं कि जब तिब्बत के पास शक्ति थी, तब समय-समय पर उसने इसका विरोध किया। ऐसे भी अवसर आए-कम से कम दो बार, जब तिब्बत की सेनाएं चीन की राजधानी तक पहुंच गईं। ऐसे भी अवसर आए, जब नेपाली सेनाएं तिब्बत में घुस गईं और तिब्बती सेनाएं नेपाल में घुस गईं।

एक अवसर ऐसा भी आया था, जब कश्मीर के एक जनरल जोरावर सिंह ने तिब्बत पर चढ़ाई की थी, पर वहां की शीत में वह और उसकी सेना, दोनों नष्ट हो गए। यह सब एक मिला-जुला इतिहास है।...हमें यह देखना है कि वर्तमान स्थिति में हमारी क्या नीति है और होनी चाहिए। यदि हम माननीय सदस्य श्री वाजपेयी का सुझाव स्वीकार करते हैं, तो उसका मतलब यह है कि हमें इस मामले में सशस्त्र संघर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए। हम किसी की पीठ ठोककर यह नहीं कह सकते कि शाबाश! लड़े जाओ, हम तुम्हें पीछे से जोश दिलाते रहेंगे। वह एक बेतुकी बात है। हमें ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए कि हम क्या कर रहे हैं या क्या हमारा उद्देश्य है।

...यदि हम नर्मी से बात करते हैं या मित्रतापूर्ण ढंग से बात करते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं है कि हम कमजोर हैं, बल्कि इसका मतलब यह है कि यह हमारी निश्चित धारणा है कि अंतरराष्ट्रीय या राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने का यही एक सही तरीका है। ... तिब्बत की जनता के साथ हमें बहुत सहानुभूति है, इसलिए नहीं कि वहां सामंतवादी व्यवस्था है। वे अलग से हो गए हैं और उनकी सामाजिक व्यवस्था परिवर्तनशील रही है। अन्य देशों में भी ऐसी व्यवस्था रही होगी, सैकड़ों वर्ष पूर्व, पर अब नहीं है। हम इस व्यवस्था को पसंद नहीं करते।

मुझे विश्वास है कि दलाई लामा भी नहीं चाहते कि यह व्यवस्था तिब्बत में रहे। ...अतः मेरा सदन से निवेदन है कि इन मामलों में हमें आवेश में आने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(लोकसभा में दिए गए उद्बोधन के अंश)

मनसा वाचा कर्मणा

सेवा का मार्ग

एक सज्जन ने ई-मेल के जरिये मुझसे पूछा है- 'अपने शहर में मैं गरीबों और बेघर लोगों की सहायता के लिए एक मिशन चलाता हूं। सप्ताह में कई घंटे काम करता हूं और अब तो कुछ हद तक बूढ़ा भी हो गया हूं। मेरी उम्र 62 साल हो गई है। मैंने कई बार 'ध्यान' लगाने की कोशिश की, पर मैं ऐसा नहीं कर पाया। मुझे लगता है कि गरीबों की मदद करने और ब्रह्मांड पर भरोसा करने के अपने सरल मार्ग पर बने रहना चाहिए। क्या यह आपको ठीक लगता है? मैं कोई गलती तो नहीं कर रहा?'

प्रश्नकर्ता मानवता की अद्भुत सेवा कर रहे हैं। आध्यात्मिक प्रगति करने या इस दुनिया को बेहतर बनाने में योगदान के लिए आपको शैक्षणिक ज्ञान या समझ की आवश्यकता नहीं है। आप दूसरों की सहायता करके अपनी आध्यात्मिक प्रगति के प्रयास को पहले ही सही दिशा दे चुके होते हैं। ऐसे लोगों को अपने आप को कभी बूढ़ा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि वे तो ज्ञान की उम्र प्राप्त कर रहे हैं।

अगर आप एक ऐसा ध्यान अभ्यास करना चाहते हैं, जिसे अभी कर सकते हैं, तो ॐ का ध्यान करें। यह एक सरल ध्यान अभ्यास है, जिसमें आप बहुत आसानी से अपनी सांस पर ध्यान देते हैं। जब आप सांस लेते हैं, तब 'सो' ध्वनि सोचते हैं और जब आप सांस छोड़ते हैं, तब ॐ ध्वनि सोचते हैं। इसलिए जब कभी भी आपका मन दूसरे विचारों में इधर-उधर जाए, तो धीरे से ॐ पर वापस आएं। बल्कि जब भी आपके पास कुछ मिनट हों, बिना किसी अपेक्षा के इस ध्यान को करें।

मानव सेवा और करुणा का मार्ग तो सबसे महान मार्ग है। हम सभी के लिए एक शानदार उदाहरण भी है।

दीपक चोपड़ा

ओम बिरला | लोकसभा अध्यक्ष

कई नगर निकायों में बैठकों की कम संख्या चिंता का विषय है। यह स्वस्थ लोकतंत्र नहीं है। हम प्रयास करें कि नगर निकायों की बैठकें नियमित हों, पर्याप्त समय के लिए हों तथा उन बैठकों में शून्यकाल और प्रश्नकाल भी हों।

अनुलोम-विलोम
प्रस्तावना में बदलाव

उद्देशिका

मूल प्रस्तावना लागू करने का सही समय

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में आपातकाल के दौरान 'समाजवादी' और 'धर्मनिरपेक्ष' शब्दों को जोड़ना ऐतिहासिक दस्तावेज की आत्मा में अनावश्यक हस्तक्षेप था। यह बदलाव न केवल संविधान निर्माताओं की मूल भावना के विरुद्ध था, बल्कि इससे देश की राजनीति में एक नई और विकृत सोच पैदा हुई थी। 'धर्मनिरपेक्ष' का अर्थ होता है किसी भी धर्म के प्रति निरपेक्ष रहना। मगर भारत कभी भी धर्म-विरोधी नहीं था, इसलिए इसके दुरुपयोग से यह धीरे-धीरे हिंदू विरोधी मानसिकता को बढ़ावा देने का औजार बन गया। राजनीतिक दलों ने 'धर्मनिरपेक्ष' और 'अल्पसंख्यक' जैसे शब्दों को अपने-अपने वोट बैंक की राजनीति के लिए इस्तेमाल किया। प्रस्तावना में किए गए इन संशोधनों के सहारे नेताओं ने विशेष समुदायों को आरक्षण, अनुदान और अन्य लाभ देकर थोक में उनका वोट हासिल किया। इस प्रक्रिया में धर्म के लिहाज से बहुसंख्यक समाज को धीरे-धीरे हाशिये पर धकेल दिया गया। एक तरह से उन्हें द्वितीय श्रेणी का नागरिक बना दिया गया, जबकि संविधान का उद्देश्य था- सभी नागरिकों के लिए समानता। यह सब इतने योजनाबद्ध ढंग से हुआ कि आम जनता को इसकी गहराई का एहसास तक न हो सका। गठबंधन की मजबूरियों के कारण सुधार अधर में लटक जाते हैं। इसलिए अब समय आ गया है कि सभी प्रकार के तुष्टीकरण और भेदभाव वाले कानूनों की समीक्षा कर उन्हें खत्म किया जाए। सभी नागरिकों को समान अधिकार, अवसर और सम्मान मिलना चाहिए, यही सच्ची धर्मनिरपेक्षता होगी और यही भारतीय संविधान की मूल आत्मा के अनुकूल भी।

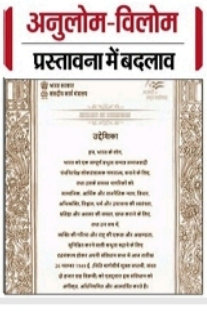

विभूति बुपक्या, टिप्पणीकार

क्या बाबा साहब आंबेडकर के संविधान की प्रस्तावना में समाजवाद व धर्मनिरपेक्ष शब्द थे? स्पष्ट रूप से नहीं। दरअसल, इंदिरा गांधी ने आपातकाल में संसद, यहां तक कि सुप्रीम कोर्ट का भी हरण कर विपक्ष के साथ-साथ लोकतंत्र के अन्य तत्वों को भी बंधक बना लिया। इन दोनों शब्दों- 'समाजवाद' व 'धर्मनिरपेक्ष' को जोड़ने के लिए संविधान की प्रस्तावना में संशोधन किया गया, जबकि प्रस्तावना ही संविधान की आत्मा होती है। आत्मा से यह छेड़छाड़ मान्य नहीं, इसलिए अगर आज इन शब्दों को हटाने की बात कही जा रही है, तो गलत नहीं है। इन दोनों ही शब्दों को हटा देना चाहिए, जो मूल प्रस्तावना का हिस्सा नहीं हैं। हमारे सासंद इसके लिए पहल करें और प्रस्तावना को उसके मूल स्वरूप में लाने के प्रयास करें।

आचार्य मयंक मिश्र, टिप्पणीकार

संशोधित शब्द हमारे संविधान की आत्मा

संविधान की प्रस्तावना में दर्ज धर्मनिरपेक्ष और समाजवाद जैसे शब्द भारत की मूल आत्मा हैं। भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद और राजगुरु जैसे क्रांतिकारियों ने धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी भारत का सपना देखा था और उसे पूरा करने के लिए अपने प्राणों की आहूति देने से भी ये पीछे नहीं हटे थे। मगर आज कुछ लोग संविधान से धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी शब्द हटाने की बात कर रहे हैं! दरअसल ऐसे लोगों को आजादी के नायकों, उनके उद्देश्यों आदि से कोई लेना-देना नहीं, इसलिए वे बार-बार संविधान पर प्रहार करते हैं, जबकि दुनिया भर में भारत की पहचान धर्मनिरपेक्षता, संविधान और समाजवाद से ही है!

धनंजय यादव, टिप्पणीकार

इस बात से शायद ही कोई इनकार करेगा कि संविधान की मूल प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद जैसे शब्द नहीं थे, बल्कि 42वें संविधान संशोधन द्वारा इनको जोड़ा गया है। मगर यह भी सच है कि हमारा संविधान शुरुआत से ही धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद जैसे मूल्यों को जीता रहा है और इससे जुड़े उपबंध पहले से ही इसका हिस्सा रहे हैं। क्या संविधान के मूल अधिकारों में धार्मिक अल्पसंख्यकों के संरक्षण के पर्याप्त प्रावधान नहीं किए गए हैं? क्या राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में आर्थिक लोकतंत्र के मूल्यों को स्वीकार नहीं किया गया है? क्या देश से समाजवादी अर्थव्यवस्था की अपेक्षा नहीं की गई है? या, फिर सरकारों द्वारा शिक्षा व स्वास्थ्य की गारंटी देने की व्यवस्था नहीं की गई है? जब ये सारी व्यवस्थाएं संविधान का हिस्सा रही हैं, तो फिर प्रस्तावना के दो शब्दों को लेकर इतनी आपत्ति क्यों? चूंकि संविधान की मूल भावना यही रही है, इसलिए जब प्रस्तावना में इन शब्दों को जोड़ा गया, तो संविधान में अलग से कुछ जोड़ने या घटाने की जरूरत नहीं पड़ी। इसीलिए, अभी जो प्रस्तावना को लेकर बहस चलाई जा रही है, उसका कोई मतलब नहीं है। इन शब्दों को यदि हम राजनीतिक दबाव के चलते हटा भी दें, तो हमारा देश एक धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी ही रहेगा। ऐसा इसलिए भी होगा, क्योंकि ये मूल्य देश की आत्मा का हिस्सा रहे हैं। दरअसल, असल मुद्दों से लोगों का ध्यान भटकाने के लिए यह सब किया जा रहा है। चूंकि कई सवालों का उचित जवाब नहीं है, तो माहौल बदलने के लिए प्रस्तावना में संशोधन के मुद्दे को उभारा जा रहा है। यह उचित नहीं है। आलोचना के बजाय आलोचकों को इन शब्दों को अपने जीवन में उतारना चाहिए।

तारानंद झा, टिप्पणीकार

कला, धर्म और राजनीति में परस्पर सम्मान बने रहना चाहिए, भले ही असहमति किसी भी स्तर की क्यों न हो। -विंसेंट प्राइस

अपने रुख पर कायम

ऐसे वक्त में, जब तिब्बती आध्यात्मिक गुरु दलाई लामा के उत्तराधिकार को लेकर कई तरह की अटकलें और विवाद चल रहे हैं, खासकर चीन की ओर से तिब्बती बौद्ध धर्म के मामलों में हस्तक्षेप की कोशिशों के बीच केंद्रीय मंत्री किरेन रिजिजू का यह बयान कि-अपने उत्तराधिकारी का चयन खुद दलाई लामा और उनका संस्थान ही कर सकता है-धार्मिक और सांस्कृतिक नजरिये से तो महत्वपूर्ण है ही, यह अंतरराष्ट्रीय राजनीति और भारत-चीन संबंधों की पृष्ठभूमि में भी एक ठोस संदेश माना जा सकता है। उल्लेखनीय है कि तिब्बती बौद्ध परंपरा में पुनर्जन्म का सिद्धांत बेहद अहम है और खासकर दलाई लामा जैसे उच्च पदों के लिए सदियों से चली आ रही यह परंपरा आध्यात्मिक होने के साथ ही तिब्बती समाज में एक संस्थागत भूमिका भी निभाती है। चीन, जो तिब्बत पर अपने राजनीतिक प्रभुत्व को वैध ठहराना चाहता है, वर्षों से इस परंपरा को नियंत्रित करने के इरादे जताता आया है। चीन के इरादों को उसके इसी बयान से समझा जा सकता है, कि दलाई लामा के पुनर्जन्म को अनुष्ठानों व परंपराओं के साथ चीन के कानूनों का भी पालन करना होगा। ऐसे में, रिजिजू का वक्तव्य एक स्पष्ट कूटनीतिक संकेत है कि भारत तिब्बती परंपरा और दलाई लामा के आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता का सम्मान करता है और चीन के किसी भी जबरन थोपे गए निर्णय को वैध नहीं मानता। ध्यान रहे कि दलाई लामा आज न केवल तिब्बतियों के लिए, बल्कि समूचे विश्व के लिए शांति, करुणा और अहिंसा के प्रतीक हैं। ऐसे में, उनके उत्तराधिकारी को लेकर कोई भी निर्णय उन्हीं की इच्छा और तिब्बती धार्मिक परंपराओं के अनुसार होना ही चाहिए। रिजिजू का बयान इसी नैतिक सत्य की पुष्टि करता है, हालांकि भारत-चीन संबंधों के मद्देनजर इसमें कुछ जटिलताएं हो सकती हैं। 1962 के युद्ध से लेकर गलवान घाटी के संघर्ष तक, दोनों देशों के बीच बार-बार उभरते तनाव का तिब्बत एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है, क्योंकि चीन दलाई लामा को एक अलगाववादी के रूप में देखता है, जबकि भारत उन्हें एक सम्मानित

आध्यात्मिक गुरु की मान्यता देता है। दरअसल, रिजिजू का बयान भारत की उस रणनीति का हिस्सा है, जो भू-राजनीतिक दबावों और हाल के समय में कुछ बेहतर हुए द्विपक्षीय संबंधों के बावजूद अपनी सैद्धांतिक स्थिति को बनाए रखने पर जोर देती है। यह वैश्विक समुदाय को भी याद दिलाता है कि धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक पहचान का सम्मान करना सभी देशों की साझा जिम्मेदारी है।

तिब्बत की आत्मा को कौन नियंत्रित करेगा

चौदहवें दलाई लामा का 90वां जन्मदिन उत्सव की अपेक्षा चेतावनी की घंटी ज्यादा है। दलाई लामा का पुनर्जन्म चीन के लिए संप्रभुता, तिब्बतियों के लिए अस्तित्व और दुनिया के लिए उस युग में सिद्धांतों की खातिर खड़े होने के बारे में है, जहां सत्ता अक्सर धर्मनिष्ठता को रौंद देती है।

चौदहवें दलाई लामा की उम्र 90 साल पूरी होने पर दुनिया न केवल एक आध्यात्मिक प्रतीक के जन्मोत्सव का जश्न मना रही है, बल्कि तिब्बत के बर्फीले पठारों, धर्मशाला के भीड़-भाड़ युक्त शरणार्थी शिविरों तथा बीजिंग और वाशिंगटन के अपारदर्शी सत्ता गलियारों तक फैले भू-राजनीतिक टकराव के रूप में भी देख रही है। उनकी बढ़ती उम्र मौलिक सवाल खड़ा करती है : तिब्बत की आत्मा को कौन नियंत्रित करेगा-निर्वासित आस्था या उस पर कब्जा करने वाली ताकत?

वैचारिक नियंत्रण से आसक्त चीन पुनर्जन्म की प्रक्रिया के बहाने एक छद्म दलाई लामा को उनकी जगह पर स्थापित करने की तैयारी कर रहा है, जो बीजिंग की धार्मिक कठपुतली के रूप में काम करेगा। पश्चिम, विशेषकर अमेरिका इस पर करीब से नजर रखे हुए है, जो जानता है कि यह केवल धार्मिक विवाद न होकर वैश्विक सिद्धांतों-धार्मिक स्वतंत्रता, स्वाधीनता और नैतिक नेतृत्व का मसला है।

केएस तोमर
राजनीतिक विश्लेषक

दलाई लामा का उत्तराधिकार 21वीं सदी में निरंकुशता और आध्यात्मिक स्वायत्तता, चीन की निष्ठुर और भारत की सौम्य शक्ति तथा तिब्बती आस्था और वैश्विक मौन के बीच शक्ति संतुलन की निर्णायक परीक्षा बनने जा रहा है। 1980 के दशक के मध्य में उनसे (दलाई लामा) हुई मुलाकातों को याद करते हुए कह सकता हूं कि लोकतंत्र की भावना उनके व्यक्तित्व में गहरे तक समाई हुई है। यह बात तब स्पष्ट नजर आई, जब उन्होंने स्वेच्छा से तिब्बत की निर्वासित सरकार के राजनीतिक मुखिया का पद त्याग दिया था, जिससे लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित नेतृत्व का मार्ग प्रशस्त हुआ।

दलाई लामा : क्रूर दुनिया में नैतिक शक्ति : 14वें दलाई लामा तेनजिन ग्यात्सो बीते छह दशकों से भी ज्यादा समय से पराधीन लोगों की उम्मीदों और तिब्बत पर नजर गड़ाए विश्व की अंतरात्मा को संभाले हुए हैं। तिब्बत में चीन के क्रूर दमन के कारण 1959 में भारत आने के बाद से ही वह अहिंसक प्रतिरोध की जीवंत प्रतिमूर्ति बने हुए हैं। उन्हें नोबेल शांति पुरस्कार तो मिला ही है, धार्मिक और राष्ट्रीय सीमाओं से परे लाखों लोग उनका सम्मान करते हैं।

हालांकि, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी उन्हें अलगाववादी खतरा मानती है। बीजिंग द्वारा दशकों तक उन्हें बदनाम करने के बावजूद उनकी वैश्विक नैतिक प्रतिष्ठा पर रत्ती भर आंच नहीं आई है, लेकिन इससे तिब्बती बौद्ध धर्म के भविष्य को नियंत्रित करने की चीन की दृढ़ता में भी कोई कमी नहीं आई है। बीजिंग अपनी 1995 की पंचेन लामा वाली रणनीति दोहराकर आध्यात्मिक वैधता की जगह राजनीतिक अनुपालन को स्थापित करने की तैयारी में है।

पुनर्जन्म की रस्साकशी : पारंपरिक रूप से दलाई लामा के उत्तराधिकारी को वरिष्ठ भिक्षुओं द्वारा अनुष्ठानों, संकेतों और अंतर्दृष्टि के जरिये पहचाना जाता है, लेकिन इस वक्त चीन ने आध्यात्मिक परंपरा और अंतरराष्ट्रीय मानक, दोनों को धता बताते हुए घोषणा कर दी है कि केवल कम्युनिस्ट पार्टी ही उनके पुनर्जन्म को स्वीकृति दे सकती है। हालांकि, दलाई लामा ने इसे रोकने की कोशिश की है और जीवित रहते हुए ही उत्तराधिकारी चुनने से लेकर संभवतः परंपरा को समाप्त करने तक के विचार व्यक्त किए हैं। उनका लक्ष्य स्पष्ट है : बीजिंग को वह वैधता न देना, जिसकी वह लालसा रखता है।

भारत का नाजुक संतुलन : दलाई लामा और एक लाख से अधिक निर्वासित तिब्बतियों को आश्रय देने की वजह से भारत कूटनीतिक दुविधा में फंसा हुआ है। दशकों से भारत ने न केवल उन्हें आश्रय दिया, बल्कि करुणा का प्रतीक भी मानता रहा है। फिर भी, हाल के वर्षों में नई दिल्ली ने बीजिंग को उकसाने के बजाय कूटनीतिक नरमी के संकेत दिए हैं-तिब्बती आयोजनों में अधिकारियों की सहभागिता को कम किया है, तो उत्तराधिकार के मसले पर संयम बरत रहा है। भारत का भूगोल और इतिहास उसे इस मुद्दे से जोड़े रखता है। निर्वासित तिब्बती भिक्षुओं द्वारा चुने जाने वाले किसी भी भावी दलाई लामा के भारत में ही रहने की संभावना है। उस आध्यात्मिक नेता को मान्यता देने या नकारने से भारत वैश्विक बहस के केंद्र में होगा। नई दिल्ली संशय में नहीं रह सकती : बीजिंग द्वारा बनाए जाने वाले लामा का पक्ष लेने से दशकों की नैतिक पूंजी नष्ट होगी, तो तिब्बती परंपरा के साथ खड़ा होना आध्यात्मिक स्वतंत्रता के प्रति भारत की प्रतिबद्धता की पुष्टि होगी।

अमेरिकी दृढ़ता : भारत के विपरीत अमेरिका ने सैद्धांतिक और सक्रिय रुख अपनाया है। 2020 का तिब्बती नीति और समर्थन अधिनियम दृढ़ता से कहता है कि अगले दलाई लामा का चुनाव पूरी तरह से तिब्बती धार्मिक समुदाय करेगा। अगर चीन इसमें कोई दखल देता है, तो उस पर प्रतिबंध लगाए जाएंगे-जो वैश्विक मामलों में विधायी नैतिक स्पष्टता का एक दुर्लभ उदाहरण है। वाशिंगटन और धर्मशाला के बीच यह गठजोड़ तिब्बती धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक अंतरराष्ट्रीय गठजोड़ की रीढ़ बन सकता है। लेकिन इसकी सफलता के लिए भारत को खुलकर सामने आना होगा। रणनीतिक अस्पष्टता के जोखिम बहुत हैं।

वैश्विक दांव पर आध्यात्मिक संकट : दलाई लामा का 90वां जन्मदिन सिर्फ उत्सव का क्षण नहीं है, बल्कि चेतावनी की घंटी भी है। उनके बाद वाली शून्यता को भरने के लिए चीन उतावला है। लेकिन दुनिया को निर्णय लेना होगा कि वह राज्य प्रायोजित मुखौटे को स्वीकार करेगी या फिर आस्था पर आधारित आध्यात्मिक वंश की प्रामाणिकता की रक्षा करेगी? दलाई लामा का पुनर्जन्म चीन के लिए संप्रभुता, तिब्बतियों के लिए अस्तित्व और दुनिया के लिए उस युग में सिद्धांतों के पक्ष में खड़े होना है, जहां सत्ता अक्सर धर्मनिष्ठता को रौंद देती है।

राजनीति से परे विरासत का संरक्षण : दलाई लामा के जीवन ने सदियों के आध्यात्मिक ज्ञान और दशकों के राजनीतिक निर्वासन के बीच सेतु का काम किया है। उनकी शिक्षाएं सीमाओं से परे हैं, तो आवाज इस अराजक दुनिया में अंतिम नैतिक दिशा-सूचकों में से एक है, लेकिन उनका उत्तराधिकार वैश्विक समुदाय की परीक्षा लेगा कि वह सत्ता या सिद्धांत और ताकत या आस्था में से किसे चुनता है। भारत के पास कर्तव्य और मौका, दोनों हैं। अगले दलाई लामा की मान्यता की आध्यात्मिक पवित्रता की रक्षा करके वह चीन के दबाव वाले क्षेत्र में नैतिक अधिकार के साथ नेतृत्व कर सकता है। पश्चिम को भी कानून से आगे बढ़कर तिब्बती धार्मिक स्वायत्तता को स्पष्ट समर्थन देना होगा। 90 वर्ष की उम्र में भी दलाई लामा गरिमा का जीवंत उदाहरण बने हुए हैं। विश्व बिरादरी को यह सुनिश्चित करना होगा कि उनकी विरासत को बीजिंग की स्याही से दोबारा न लिखा जाए।

edit@amarujala.com

अंतरराष्ट्रीय

फिर एक नए युद्ध विराम की ओर

गाजा में फिर युद्ध विराम पर चर्चा हो रही है। यहां युद्ध समाप्त करने के पर्याप्त कारण हैं, लेकिन क्या इस्राइल और हमास में ऐसा करने की इच्छाशक्ति है?

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का कहना है कि इस्राइल ने गाजा में 60 दिन के युद्ध विराम की शर्तों पर सहमति जताई है। मार्च में आखिरी अल्पकालिक युद्ध विराम के टूटने के बाद फिर से दो महीने के युद्ध विराम पर चर्चा हो रही है। चूंकि गाजा में तबाही दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, तो क्या इस बार स्थिति कुछ अलग होगी? कतर के मध्यस्थों द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव में कथित तौर पर हमास द्वारा 60 दिनों की अवधि में दस जीवित बंधकों और 18 मृत बंधकों के शवों को सौंपने की बात कही गई है, जिसके बदले में कई फलस्तीनी कैदियों को रिहा किया जाएगा। यदि दीर्घकालिक समझौता हो जाता है, तो शेष 22 बंधकों को रिहा कर दिया जाएगा। 60 दिन की युद्ध विराम अवधि में शत्रुता के स्थायी अंत और गाजा में युद्ध के बाद के शासन के लिए रोडमैप पर भी बातचीत होगी।

लेकिन यह योजना इस साल जनवरी से मार्च तक आठ सप्ताह के तीन चरण के युद्ध विराम के समान है, जो बंधकों के आदान-प्रदान के पहले चरण के बाद ही टूट गया था। हमास के लिए, दीर्घकालिक युद्ध विराम का मतलब युद्ध का स्थायी अंत और गाजा से इस्राइली सेना की वापसी है, जबकि इस्राइल सत्ता से हमास को पूरी तरह से हटाना, उसकी सैन्य शाखा को खत्म और निरस्त्र करना चाहता है तथा हमास के बचे हुए वरिष्ठ नेताओं को निर्वासित करना चाहता है।

जूली एन नॉर्मन
यूनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन में एसो.प्रोफेसर

चुनौतियों के बावजूद ऐसे कई कारण हैं कि युद्ध विराम का यह प्रयास अलग हो सकता है। सबसे पहला और महत्वपूर्ण कारण इस्राइल और ईरान के बीच हाल ही में हुआ तथाकथित '12-दिवसीय युद्ध' है, जिसे इस्राइल ने ईरान की परमाणु क्षमताओं को कम करने की एक बड़ी सफलता के रूप में प्रचारित किया है। इस कथित जीत से नेतन्याहू को अपने गठबंधन के अति-दक्षिणपंथी कट्टरपंथियों की आपत्तियों के बावजूद युद्ध विराम के लिए राजनीतिक गतिशीलता मिल गई है, जिन्होंने सरकार को गिराने की धमकी दी थी। हालांकि, यह स्पष्ट नहीं है कि प्रस्तावित शर्तों में 60 दिन की अवधि के बाद इस्राइल को युद्ध पुनः शुरू करने से रोकने की गारंटी शामिल होगी या नहीं। पिछले दौर की वार्ता के बाद से नए मुद्दे भी उठे हैं, जो आगे और भी चुनौतियां खड़ी कर सकते हैं। हमास गाजा में पारंपरिक मानवीय सहायता वितरण की वापसी की मांग कर रहा है।

पिछले युद्ध विराम के बाद से गाजा पर इस्राइल का सैन्य नियंत्रण और भी मजबूत हो गया है। नेतन्याहू ने हाल ही में कहा कि युद्ध के बाद भी इस्राइल 'गाजा पर पूर्ण सुरक्षा नियंत्रण' रखेगा। ऐसे में, भले ही अस्थायी युद्धविराम पर सहमति हो जाए, लेकिन दीर्घकालिक युद्धविराम की दिशा में आगे बढ़ना या स्वीकार्य 'दिन के बाद' समझौते पर पहुंचना मुश्किल है।

फिर भी, मौजूदा समय में सफलता का अवसर है। ट्रंप युद्ध विराम में फिर से दिलचस्पी ले रहे हैं और नेतन्याहू के पास समझौता करने और बंधकों को वापस घर लाने का एक दुर्लभ राजनीतिक अवसर है। हमास न केवल इस्राइली सैन्य हमलों के कारण कमजोर हुआ है, बल्कि गाजा के लोगों की बढ़ती निराशा के कारण भी कमजोर हुआ है, जो युद्ध समाप्ति के लिए आतुर हैं। सवाल यह है कि क्या इस्राइल और हमास में युद्ध खत्म करने की इच्छाशक्ति है। *(द कन्वर्सेशन से)*

एआई का उपयोग हमें एक सीखने वाले उपकरण के तौर पर करना चाहिए, न कि कॉपी-पेस्ट के सिद्धांत की तरह।
-एलेना कार्वाल्हो

हृदय की आवाज सुनें

जीवन का असली आनंद तब मिलता है, जब हम अपनी आंतरिक शक्ति को गले लगाते हैं और सपनों को साकार करने की हिम्मत करते हैं। अपने हृदय की आवाज सुनें, और उसे ही अपना मार्गदर्शक बनाएं।

मैंने हमेशा माना है कि कल्पना वह शक्ति है, जो हमें सीमाओं से परे ले जाती है। मैंने चार्ल्स बैबेज की एनालिटिकल मशीन पर काम किया, तो न केवल संख्याओं और गणनाओं को देखा, बल्कि एक ऐसी दुनिया देखी, जहां मशीनें कविता, संगीत और विचारों को जीवंत कर सकती हैं। जीवन में भी यही सत्य है। हमें दिमाग को खुला रखना चाहिए, ताकि हम नई संभावनाओं को देख सकें। कल्पना ही वह शक्ति है, जो हमें अज्ञात को समझने और असंभव को संभव बनाने की क्षमता देती है। जीवन में उतार-चढ़ाव आते हैं, लेकिन मैंने कभी अपने सपनों को छोड़ा नहीं। कठिनाइयां हमें आकार देती हैं, लेकिन वे हमें परिभाषित नहीं करतीं। हमें अपने भीतर की आग को जलाए रखना चाहिए, जो हमें नया सीखने, नया रचने के लिए प्रेरित करती है।

ऐडा लवलेस

जीवन एक गणितीय समीकरण की तरह नहीं है, जिसे एकमात्र सही उत्तर की तलाश हो। यह एक कविता है, जिसमें हर पंक्ति का अपना अर्थ और सौंदर्य होता है। जीवन को पूरी तरह से जीने के लिए, हमें तर्क और भावनाओं का संतुलन बनाना होगा। मैंने विज्ञान और कला को हमेशा एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखा। विज्ञान हमें तथ्य देता है, लेकिन कला उन तथ्यों को अर्थ प्रदान करती है। अपने आप को सीमित न करें। समाज, समय या परिस्थितियां आपको रोक सकती हैं, लेकिन आपका दिमाग स्वतंत्र है। मेरे समय में, एक महिला के लिए विज्ञान और गणित के क्षेत्र में काम करना असामान्य था, लेकिन मैंने अपने जुनून को चुना। हमेशा अपने जुनून को चुनें, जो आपको प्रेरित करता है, वही आपका रास्ता है। जीवन एक यात्रा है, जिसमें हर कदम पर कुछ नया सीखने को मिलता है। जीवन का उद्देश्य केवल जीवित रहना नहीं, बल्कि जीवंत रहना है। अपने सपनों को पंख दें, और उन्हें उड़ने दें।

जीवन धारा

मैंने सीखा कि धैर्य और लगन हमें उन ऊंचाइयों तक ले जा सकते हैं, जिन्हें हमने कभी असंभव समझा था। मेरे लिए, हर चुनौती एक नया अवसर थी, जो मुझे मेरे लक्ष्यों के करीब लाई। जीवन में हर रुकावट को एक सीढ़ी की तरह देखें, जो हमारी आगे बढ़ने में मदद करती है। जीवन का असली आनंद तब मिलता है, जब हम अपनी आंतरिक शक्ति को गले लगाते हैं और अपने सपनों को साकार करने की हिम्मत करते हैं। अपने हृदय की आवाज सुनें, और उसे अपना मार्गदर्शक बनाएं। हर दिन एक नई कहानी लिखने का मौका है, इसे उत्साह और सृजनशीलता के साथ जिएं।

एआई और एक कलाकार का दर्द

एआई मुझसे तेज पेंटिंग बना सकता है, लेकिन कला कोई रेस थोड़े ही है। कलाकार के दिल से निकली बात जब उसकी कला के जरिये दर्शकों तक पहुंचती है, तभी तो लव लेटर पूरा होता है। मशीनें इसे कहां समझेंगी?

क्रिस्टोफ नीमन
द न्यूयॉर्क टाइम्स

मेरे शयनकक्ष की दीवारों पर कुछ तस्वीरें लगी हैं, जो मेरे बच्चों ने तब बनाई थीं, जब वे छह या सात साल के थे। कुछ हैप्पी बर्थडे टाइप के, तो कुछ आड़े-तिरछे आकार और रेखाएं। मुमकिन है, आपको ये साधारण लगें, लेकिन मेरे लिए ये बेशकीमती हैं। मैं पेशे से एक डिजाइनर हूं। कला ही मेरा क्षेत्र है, लेकिन कला के साथ मेरा जो रिश्ता है, एआई के विकास ने मुझे इसके बारे में फिर से सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। आखिर कौन होगा, जो नहीं चाहेगा कि जो भी बनाना है, वह मशीन से कहा जाए और कुछ सेकेंड के भीतर उत्कृष्ट तस्वीर पा ली जाए?

एआई का अब तक का अनुभव भी शानदार रहा है, लेकिन मैं एक कलाकार हूं और मैं चाहता हूं कि मेरी कला मौलिक हो। जबकि, एआई का एल्गोरिदम, कम से कम अब तक तो ऐसा ही है कि वह इंटरनेट की दुनिया में बिखरे विचारों में से ही अपने विचार चुनता है। कहा जाता है कि एआई प्रॉम्प्ट लिखने वाला कलाकार कुछ ऐसा हो, जो जानता हो कि उसे क्या चाहिए। लेकिन कला की शुरुआत एक अस्पष्ट लक्ष्य से हो सकती है? एक कलाकार के तौर पर मुमकिन है कि चलते-चलते मैं खो जाऊं, थोड़ा ठहर जाऊं या फिर किसी ऐसी राह पर चला जाऊं, जो पहले खुद मेरे दिमाग में भी न हो। रचनात्मकता एक घना जंगल है, जहां अप्रत्याशित मोड़ आते हैं। यहां लगातार सावधान रहने की जरूरत है, क्योंकि यहीं नए विचार पैदा होते हैं। इन क्षणों से गुजरे बगैर मैं कला कर्म कर ही नहीं सकता। अब सवाल उठता है कि एआई सहयोगी के तौर पर कैसा है?

मुझे वह दिन याद आता है, जब मेरे स्कूल में पहली बार हम बच्चों को कंप्यूटर दिखाया गया था। हमारे लिए वह जादू था। फिर हम उसमें टाइप करने लगे, एनिमेशन बनाने लगे और तब से हर डिजिटल टूल ने कलाकारों का काम आसान बनाया है। एआई भी इस मामले में कोई अपवाद नहीं रहा है। एआई एक वरदान है या अभिशाप, यह इस पर भी निर्भर है कि हम आखिर इससे पाना क्या चाहते हैं। जर्मन चित्रकार अल्ब्रेश एल्टडोरफर ने 1529 में एक कमाल की तस्वीर बनाई थी, जिसका नाम था 'द बैटल ऑफ अलेक्जेंडर ऐट आइसस'। कला के इतिहासकार कहते हैं कि इस तस्वीर में पांच से दस हजार आकृतियां दिखाई देती हैं, जबकि चैटजीपीटी 1,162 आकृतियां ही बताता है। एल्टडोरफर ने असंभव-सी तस्वीर बनाई, लेकिन अगर उसे एआई की सुविधा मिलती, तो शायद वह इससे भी जटिल कुछ बना पाता। मेरे जैसे तमाम कलाकार दिनों, हफ्तों, महीनों तक एक कॉन्सेप्ट के पीछे भागते हैं, और जब फाइनल संस्करण तैयार होता है, तब पता चलता है कि फालतू में ही इतनी मेहनत की। यह कला की यात्रा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है या फिर कलाकारों द्वारा दोहराई जा रही बेवकूफी, एआई जिसकी जगह लेने आया है।

मेरा मानना है कि कोई भी कला दर्शकों के लिए होती है, लेकिन ईमानदारी से कहूं, तो मुझे अच्छा लगता है, जब कोई मेरी कला और इस बहाने मेरी तारीफ करता है। मुझे सहायक टूल्स से आपत्ति नहीं है, लेकिन अगर मुझे सिर्फ प्रॉम्प्ट लिखना हो, तो यह मैं कैसे सहन करूं? पिछली सदी में कला के क्षेत्र में जो आंदोलन हुए, उनका उद्देश्य बस इतना था कि कला की प्रक्रिया से कलाकार को बाहर किया जाए, जो एक दिलचस्प बौद्धिक बहस भी है। सवाल यह है कि क्या कला को कलाकार चाहिए? जेम्स टयूरेल द्वारा निर्मित एक पेंटिंग मेरी पसंदीदा है, जिसमें छत पर एक छेद है, जिससे आसमान दिखता है। जब पहली बार मैंने इसे देखा, तो मैं समझ नहीं पाया कि तस्वीर कह क्या रही है, लेकिन जब समझ आया, तो मुझे लगा कि इसने मेरी जिंदगी बदल दी है। एक कलाकार के दिल से कुछ निकलता है, जो तस्वीरों के जरिये दर्शकों तक पहुंचता है, तभी तो लव लेटर पूरा होता है। एआई मुझसे जल्दी तस्वीरें बना सकता है, लेकिन कला कोई रेस थोड़े ही है। क्या एआई मेरे शयन कक्ष में लगी बेशकीमती तस्वीरें बना सकता है?

©The New York Times 2025

अनसुपरवाइज्ड लर्निंग

यह मशीन लर्निंग की वह शाखा है, जो बिना वर्गीकृत किए हुए डाटा से दो-चार होती है। सुपरवाइज्ड लर्निंग के विपरीत, जहां डाटा को किसी विशिष्ट श्रेणी या परिणाम के साथ वर्गीकृत किया जाता है, वहीं अनसुपरवाइज्ड लर्निंग एल्गोरिदम को डाटा के अर्थ के किसी भी पूर्व ज्ञान के बिना डाटा के भीतर पैटर्न और संबंध खोजने का काम सौंपा जाता है। अनसुपरवाइज्ड मशीन लर्निंग एल्गोरिदम बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के छिपे हुए पैटर्न और डाटा को खोजते हैं, यानी हम अपने मॉडल को आउटपुट नहीं देते हैं। प्रशिक्षण मॉडल में केवल इनपुट पैरामीटर मान होते हैं और यह अपने आप समूहों या पैटर्न की खोज करता है।

कल्पमेधा

गणित एक ऐसा उपकरण है, जिसकी शक्ति अतुल्य है और जिसका उपयोग सर्वत्र है; एक ऐसी भाषा, जिसे प्रकृति अवश्य सुनेगी और जिसका सदा वह उत्तर देगी।

- प्रो हाल

प्रदूषण के पैमाने

दिल्ली और अन्य महानगरों में प्रदूषण की समस्या जिस स्तर पर गहराती गई है, उसमें इस पर काबू पाने के लिए किए जाने वाले उपायों से शायद ही किसी को असहमति होगी। विडंबना यह है कि कई बार किसी समस्या से पार पाने के लिए जिन उपायों का सहारा लिया जाता है, उसकी व्यावहारिकता कठघरे में होती है। दिल्ली में हर अगले साल प्रदूषण के गहराते संकट के सबसे बड़े कारणों में एक वाहनों से होने वाले उत्सर्जन को माना गया और इस आधार पर पिछले कुछ वर्षों से सम-विषम जैसे नियम लागू कर वाहनों की आवाजाही को नियंत्रित करने की कोशिश की गई। इसके अलावा, पुराने वाहनों को सड़कों से हटाने को लेकर नियम-कायदे बनाए गए। हालांकि इसके अपेक्षित नतीजे को लेकर हमेशा संशय रहा। गौरतलब है कि दिल्ली में कुछ दिन पहले यह घोषणा की गई कि पंद्रह वर्ष पुराने पेट्रोल और दस वर्ष पुराने डीजल वाहनों को ईंधन नहीं मिलेगा। साथ ही पेट्रोल पंप पर पुरानी गाड़ियों को जब्त किया जा रहा था।

जाहिर है, एक साथ बड़ी तादाद में वाहनों के सड़कों से हटाने की नौबत आने पर आम लोगों के बीच व्यापक पैमाने पर आक्रोश का भाव पैदा हुआ और सरकार के इस फैसले पर सवाल उठे कि क्या अकेले इस उपाय से दिल्ली में प्रदूषण की समस्या को खत्म किया जा सकता है। इससे बड़ी संख्या में लोगों की आजीविका भी प्रभावित हो सकती है। सरकार के पास इसका कोई ठोस जवाब नहीं है। यह बेवजह नहीं है कि गुरुवार को दिल्ली सरकार ने वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग को पत्र लिख कर कहा कि तकनीकी चुनौतियों और जटिल प्रणाली के कारण तय मियाद पूरी कर चुके वाहनों पर ईंधन प्रतिबंध लगाना व्यावहारिक नहीं है। यानी फिलहाल पुराने वाहनों को सड़कों से हटाने की कवायद थमती दिख रही है। हालांकि इसे लेकर आम लोगों के बीच जैसी प्रतिक्रिया सामने आई, उसके बाद यह देखने की बात होगी कि इस मसले पर सरकार क्या रुख अपनाती है।

माना जाता है कि तकनीकी रूप से पुराने, अधिक ईंधन खपत करने और खराब रखरखाव वाले वाहनों से प्रदूषण ज्यादा फैलता है और ऐसी स्थिति में ऐसे वाहन पर्यावरण और लोगों की सेहत के लिए जोखिम भरे हो सकते हैं। मगर ऐसे सवाल भी उठते रहे हैं कि प्रदूषण फैलाने के लिए किसी वाहन की उम्र को पैमाना माना जाना चाहिए या फिर प्रदूषित पदार्थ उत्सर्जित करने की जांच के आधार पर वाहन के दुरुस्त होने के बारे में तय किया जाएगा। अगर कोई पुराना वाहन पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिहाज से पूरी तरह सुरक्षित है, तो उसकी उम्र को ही अकेला मानदंड क्यों बनाया जाना चाहिए? जहां तक दिल्ली का सवाल है, यह न केवल अन्य राज्यों के कुछ शहरों को मिला कर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के रूप में जाना जाता है, बल्कि दिल्ली के अलावा अन्य शहरों में पुराने वाहनों को लेकर अलग नियम हैं। साथ ही दिल्ली में आसपास के राज्यों से हर रोज ऐसे हजारों वाहन आते-जाते हैं, जो पुराने हो सकते हैं, हालांकि उन्हें दूसरे राज्यों में प्रदूषण जांच के पैमाने पर दुरुस्त माना जाता है। शायद इसीलिए ऐसे सवाल उठते रहे हैं कि जिन वाहनों को दूसरे राज्यों या इलाकों में प्रदूषण फैलाने की कसौटी पर सुरक्षित माना जाता है, उन्हें दिल्ली के लिए मुसीबत क्यों माना जाना चाहिए! या फिर अन्य राज्यों के वाहनों के लिए अलग नियम कैसे सही हैं! निश्चित रूप से प्रदूषण एक गंभीर समस्या है। मगर इससे निपटने के तौर-तरीकों में अगर विरोधाभास होगा तो उसकी व्यावहारिकता कसौटी पर रहेगी।

सुरक्षा पर सवाल

महाराष्ट्र के पुणे में खुद को 'कूरियर डिलीवरी एजंट' बता कर एक व्यक्ति ने जिस तरह के अपराध को अंजाम दिया, उसने शहरों-महानगरों में विकसित हो रही एक नई आपराधिक शैली को लेकर सबको चिंता में डाला है। गौरतलब है कि एक अज्ञात व्यक्ति ने खुद को सामान पहुंचाने वाला बताया और इस बहाने एक युवती के घर में घुस कर उससे बलात्कार किया। यही नहीं, उसने जबरन पीड़ित युवती के साथ अपनी तस्वीर ली और किसी को बताने पर उसे सब जगह प्रसारित कर देने और दोबारा आने की धमकी दी। इस घटना ने कोई काम करने या सामान पहुंचाने घर में आने वाले लोगों को लेकर एक नई आशंका खड़ी कर दी है। ऐसा लगता है कि किसी बेहद सुरक्षित मानी जाने वाली जगह पर भी आपराधिक मानसिकता वाले व्यक्ति की पहुंच हो सकती है या फिर कोई अचानक अपराधी की शक्ल में तब्दील हो सकता है। अस्पताल के सघन चिकित्सा कक्ष में उपचाराधीन युवती का कोई कैसे यौन उत्पीड़न करने का साहस कर लेता है? पुणे की आइटी पेशेवर युवती से बलात्कार करने वाला जब यह कहता है कि वह दोबारा आएगा, तो इससे साबित होता है कि आपराधिक मानसिकता के किसी व्यक्ति का दुस्साहस स्त्रियों के खिलाफ मनमानी करने से आगे बढ़ कर उनके आत्मसम्मान को गहरी ठेस पहुंचाने तक पहुंच गया है। यह न केवल कानून व्यवस्था के नाकाम होने का सबूत है, बल्कि हमारी सामाजिक जागरूकता भी कठघरे में है।

यह कोई छिपा तथ्य नहीं है कि यौन हिंसा के ज्यादातर मामलों में इंसाफ मिलने की हकीकत क्या है। ग्रामीण इलाकों में आमतौर पर ऐसे मामलों को दबाने और रफा-दफा करने की कोशिश होती है। ऐसे में अपराधियों का दुस्साहस बढ़ता है। जबकि महिलाओं के लिए अपने खिलाफ ऐसे अपराध छिपाने का मामला नहीं होना चाहिए। अधिकतर अपराधी स्त्री की इसी भावनात्मक कमजोरी का फायदा उठाते हैं। पिछले कुछ वर्षों से महिलाओं के यौन उत्पीड़न का वीडियो बना कर उसे प्रसारित कर देने और पीड़िता को मुंह बंद रखने की धमकी देने की घटनाएं सामने आने लगी हैं। यह नई आपराधिक प्रवृत्ति है, जिससे निपटने के लिए ऐसे अपराध के खिलाफ मुखर होना पड़ेगा।

प्राकृतिक आपदाओं में जोखिम का दायरा

कोई भी प्राकृतिक आपदा अलग-अलग सामाजिक वर्गों के बीच भेद नहीं करती, लेकिन उनके प्रभाव सामाजिक व्यवस्था में निहित असमानताओं के कारण असमान रूप से महसूस किए जाते हैं। विशेषकर ग्रामीण, आदिवासी और वंचित समुदायों की महिलाएं इस असमानता का सबसे बड़ा भार उठाती हैं।

विनीता परमार

प्राकृतिक आपदाएं केवल भौतिक रूप से ही विनाश नहीं लातीं, बल्कि वे उन अदृश्य सामाजिक खामियों को भी उजागर कर देती हैं, जो अलग-अलग सामाजिक वर्गों के आधार पर लोगों के जीवन को प्रभावित करती हैं। ये घटनाएं समाज में पहले से मौजूद असमानताओं को और गहरा कर देती हैं। यों प्रभावित इलाकों में सभी पर इनका असर पड़ता है, लेकिन विशेष रूप से महिलाएं और लड़कियां इन आपदाओं के प्रभाव से ज्यादा जोखिम झेलती हैं। उनके स्वास्थ्य, विस्थापन, शिक्षा, आजीविका और सुरक्षा जैसे मूलभूत अधिकार संकट में पड़ जाते हैं।

अध्ययन बताते हैं कि चाहे चक्रवात हो, बाढ़ व सूखा हो या फिर भूकम्प, इन आपदाओं के समय महिलाओं और बच्चों की मृत्यु की संभावना पुरुषों की तुलना में कई गुना अधिक होती है। जलवायु परिवर्तन के कारण जो लोग विस्थापित होते हैं, उनमें से लगभग अस्सी फीसद महिलाएं होती हैं। यह आंकड़ा तब और भयावह हो जाता है, जब हम यह देखते हैं कि मौजूदा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाएं महिलाओं को न तो वैकल्पिक आजीविका के पर्याप्त अवसर देती हैं और न ही उन्हें प्रकृति के साथ अपनी पारंपरिक गतिशीलता बनाए रखने की स्वतंत्रता देती हैं। वर्ष 2010 में पाकिस्तान में आई विनाशकारी बाढ़ ने भी इस कठोर सच्चाई को उजागर किया था। सीमित स्वतंत्रता और संसाधनों तक कठिन पहुंच ने वहां की महिलाओं को और अधिक असुरक्षित बना दिया।

भारत के कई भागों में हर वर्ष आने वाली बाढ़ हजारों लोगों को विस्थापित कर देती है, लेकिन महिलाएं इस त्रासदी को और अधिक कठिन रूप में झेलती हैं। विशेष रूप से खुले में शौच जैसी बुनियादी मजबूरी, जो उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा और सम्मान को खतरे में डाल देती है। बाढ़ या अन्य आपदाओं के दौरान साफ पानी, साबुन, सैनिटरी पैड, कपड़े और निजी स्थान जैसी आवश्यक सुविधाएं दुर्लभ हो जाती हैं। महिलाएं और लड़कियां अक्सर असुरक्षित विकल्पों का इस्तेमाल करने के लिए मजबूर हो जाती हैं, जिससे विभिन्न तरह के संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। इतिहास और आंकड़े भी इसी ओर संकेत करते हैं। वर्ष 1991 में बांग्लादेश में आए चक्रवात में मरने वालों में ज्यादातर महिलाएं थीं। वर्ष 2003 में यूरोप में गर्मी की लहर ने फ्रांस में सबसे अधिक वृद्ध महिलाओं की जान ली। अमेरिका में कैटरीना तूफान के दौरान गरीब तबके की अफ्रीकी-अमेरिकी महिलाएं सबसे अधिक प्रभावित हुईं।

एक और अहम पहलू पोषण का है। विशेषज्ञों के अनुसार, किसी व्यक्ति की पोषण स्थिति यह निर्धारित करती है कि वह आपदा का सामना कितनी क्षमता से कर सकता है। एक रपट बताती है कि दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया की 45 से 60 फीसद महिलाओं का वजन सामान्य से कम है और 80 फीसद गर्भवती महिलाएं आयरन की कमी से ग्रस्त हैं। केन्या में महिलाएं प्रतिदिन पानी लाने के लिए अपनी लगभग 85 फीसद ऊर्जा खर्च करती हैं और सूखे के समय यह भार और अधिक बढ़ जाता है। दूसरी ओर, वैश्विक विश्लेषण यह दर्शाता है कि जिन देशों में महिलाएं अधिक सशक्त हैं, वहां आपदाओं के समय मृत्यु दर में लैंगिक आधार पर अंतर अपेक्षाकृत कम होता है। आपदा के बाद सबसे पहले महिलाएं अपनी आजीविका के साधनों

से वंचित होती हैं- जैसे खेत, मवेशी, दुकानें या घरेलू श्रम। जब आर्थिक स्वतंत्रता छिन जाती है, तो वे घरेलू हिंसा, यौन शोषण, तस्करी और अन्य प्रकार के सामाजिक शोषण का शिकार होने लगती हैं। पुनर्वास योजनाएं अक्सर तटस्थ होती हैं, जो महिलाओं की विशेष आवश्यकताओं और

> **विशेषज्ञों के अनुसार, किसी व्यक्ति की पोषण स्थिति यह निर्धारित करती है कि वह आपदा का सामना कितनी क्षमता से कर सकता है। एक रपट बताती है कि दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया की 45 से 60 फीसद महिलाओं का वजन सामान्य से कम है और 80 फीसद गर्भवती महिलाएं आयरन की कमी से ग्रस्त हैं। केन्या में महिलाएं प्रतिदिन पानी लाने के लिए अपनी लगभग 85 फीसद ऊर्जा खर्च करती हैं और सूखे के समय यह भार और अधिक बढ़ जाता है। दूसरी ओर, एक वैश्विक विश्लेषण यह दर्शाता है कि जिन देशों में महिलाएं अधिक सशक्त हैं, वहां आपदाओं के समय मृत्यु दर में लैंगिक आधार पर अंतर अपेक्षाकृत कम होता है।**

परिस्थितियों को अनदेखा कर देती हैं। इस प्रकार महिलाएं दोहरी मार सहती हैं- एक आपदा की और दूसरी सामाजिक ढांचों की।

शिक्षा का अधिकार भी इस संकट का हिस्सा बन जाता है। जब आपदाओं के कारण विद्यालय लंबे समय तक बंद रहते हैं, तो विशेष रूप से लड़कियां शिक्षा से बाहर हो जाती हैं। कई बार यह स्थिति उन्हें समय से पहले विवाह की ओर धकेल देती है, जिससे उनके अधिकार, सपने और संभावनाएं समय से पहले दम तोड़ देती हैं। एक और रपट बताती है कि वर्ष 2022 में प्राकृतिक आपदाओं के कारण दुनिया भर में 3.28 करोड़ लोग विस्थापित हुए, जिनमें से लगभग आधी महिलाएं और लड़कियां थीं। इन महिलाओं ने यौन हिंसा, कुपोषण, स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता और शिक्षा में व्यवधान जैसी गंभीर समस्याओं का सामना किया। इसी तरह, एक आंकड़े के मुताबिक, वर्ष 2004 की सुनामी में अंडमान-निकोबार, श्रीलंका और इंडोनेशिया में पुरुषों की तुलना में दोगुनी संख्या में महिलाएं मारी गईं। राहत शिविरों में यौन उत्पीड़न और असुरक्षित प्रसव की समस्याओं ने व्यवस्था को बेनकाब कर दिया। श्रीलंका में अधिक पुरुष जीवित रह पाए, क्योंकि उन्हें तैरना और पेड़ पर चढ़ना सिखाया गया था। वहीं लड़कियों को ये अवसर आमतौर पर नहीं मिलते। लैंगिक आधार पर यह सामाजिक विभेद आपदाओं के समय प्राणघातक साबित होता है।

भारत में हर वर्ष औसतन छह से आठ बड़े चक्रवात आते हैं और बाढ़ देश के लगभग चार करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र को प्रभावित करती है। वर्ष 2019 में ओड़ीशा का फेनी चक्रवात, 2020 में पश्चिम बंगाल में अम्फान और हर वर्ष बिहार और असम में बाढ़ लाखों लोगों को विस्थापित करती रही है। अम्फान से प्रभावित हुए 1.5 करोड़ लोगों में महिलाओं को राहत शिविरों में स्वच्छता, गोपनीयता और सुरक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं की गंभीर कमी का सामना करना पड़ा। वर्ष 2023 में आई बाढ़ के दौरान बिहार में कई महिलाओं को प्रसव के समय प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हो सकीं। असम में वर्ष 2022 की बाढ़ के बाद लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर में 18 फीसद की वृद्धि देखी गई। बाल विवाह, मानसिक तनाव और यौन हिंसा की घटनाओं में भी बढ़ोतरी हुई।

आपदाओं के बाद महिलाओं की मानसिक स्थिति बेहतर नहीं रहती। वे न केवल अपने परिजनों की क्षति का ज्यादा शोक मनाती हैं, बल्कि अपने अस्तित्व और भविष्य की सुरक्षा के लिए भी संघर्ष करती हैं। राहत शिविरों की असुरक्षित परिस्थितियां, समाज में गहरी असमानता और निर्णय प्रक्रिया से उनकी अनुपस्थिति उन्हें और अधिक हाशिये पर धकेल देती है। आपदा के दौरान महिलाएं अक्सर अपने बच्चों-बुजुर्गों और परिवार के अन्य सदस्यों की देखभाल में जुट जाती हैं, जिससे स्वयं की सुरक्षा और राहत पाने के अवसर उनसे छूट जाते हैं। यह स्पष्ट है कि कोई भी प्राकृतिक आपदा स्वयं में अलग-अलग सामाजिक वर्गों के बीच भेद नहीं करती, लेकिन उनके प्रभाव सामाजिक व्यवस्था में निहित असमानताओं के कारण असमान रूप से महसूस किए जाते हैं। विशेषकर ग्रामीण, आदिवासी और वंचित समुदायों की महिलाएं इस असमानता का सबसे बड़ा भार उठाती हैं। इसलिए, आपदा प्रबंधन को केवल तकनीकी प्रतिक्रिया के रूप में न देख कर उसे संवेदनशील, न्यायसंगत और सहभागितापूर्ण दृष्टिकोण से समझना और लागू करना अत्यंत आवश्यक है।

महिलाएं केवल राहत प्राप्त करने वाली नहीं, बल्कि नेतृत्वकर्ता और निर्णायक भूमिका वाली बनें। यह बदलाव आपदा प्रबंधन की प्रभावशीलता को भी मजबूत करेगा और समाज को अधिक समावेशी, सशक्त और टिकाऊ बनाएगा। तभी हम एक ऐसे समाज की ओर बढ़ सकेंगे, जो न केवल आपदाओं का सामना कर सके, बल्कि सभी नागरिकों, विशेष रूप से महिलाओं के लिए सुरक्षित और समान अवसर भी सुनिश्चित कर सके।

आत्मचिंतन की अंतर्दृष्टि

कृष्ण कुमार रत्तू

इन दिनों जब पूरी दुनिया युद्ध की दहशत से अभिशप्त दिखती है तो फिर अमन की तलाश में कौन से रास्ते तलाश किए जाएं, ताकि मानव जीवन सुरक्षित रह सके? असल में यही है जिंदगी के लिए शांति की अंतर्दृष्टि का वह आयाम जो जिंदगी को संतुष्टि के साथ शांति के मार्ग पर चलते हुए नई अंतर्दृष्टियों के नए इंद्रधनुषों को खोलता है। शांति की अंतर्दृष्टि का सीधा अर्थ है जीवन में शांति की गहराई को समझना और जीने के नेतृत्व तथा प्रभावों को जानना। मगर यह उन स्थितियों पर निर्भर करता है कि जिस समाज में हम जी रहे हैं, उसमें सामाजिक आर्थिक और मानव प्रकृतियों की प्रक्रिया कैसी है।

वर्तमान समय में जिस तरह आज नई तकनीक और सूचना प्रौद्योगिकी के चलते हर तरह की कृत्रिम बुद्धिमत्ता का वातावरण आदमी को चौबीस घंटों नियंत्रित करने लगा है, उसके लिए यह अति आवश्यक हो गया है कि आज हम अपनी जिंदगी यानी अपनी सांसों को अपने दिल और अपने मन मस्तिष्क को थोड़ा ठहराव प्रदान करने और शोर के इस माहौल को रोकने के लिए शांति की तलाश के वे तरीके तलाशें, जहां शांति का उपवन हो, जिंदगी का शांतिपूर्ण माहौल हो। यह सच है कि आज हमारे जीने के क्रम और जीवन का रास्ता बिखर गया है। इन दिनों हमारी शांति की दुआओं के मद्देनजर बदलती हुई दुनिया और जिंदगी की अंतर्दृष्टि के कई विभिन्न पहलू हो सकते हैं और मन की शांति हमारे तनाव को कम कर सकती है।

भारतीय संस्कृति की ध्यान प्रेक्षा में जीवन में प्राथमिक आवश्यकता आत्मचिंतन अंतर्दृष्टि को ही बताया गया है, लेकिन सामाजिक और आत्मिक शांति इन दिनों जिस तरह से बदल रही दुनिया में एक नई दुनिया का नया स्वरूप अब हमारे सामने परिलक्षित है, वहां पर अंतरराष्ट्रीय शांति के संघर्ष और जड़ों के बजाय जिंदगी को बचाने का प्रयास कहां किया जाए। यह भी सच है कि इन दिनों विश्व में हमने जिस तरह से जंगल, जल और वायु को प्रदूषित किया है, वह आने वाले वर्षों में हमारे उस प्रश्न पर झगड़ों का कारण बनेगा। इसमें असली लड़ाई अब सांसों के लिए वायु प्राण की शांति में जीने की लालसा में होगी। जल की बूंद-बूंद के लिए लड़ाई के मुहाने पर पहुंचा हुआ विश्व शांति और युद्ध के बीच क्या चुनना चाहता है?

दरअसल, जिस दुनिया में हम जी रहे हैं, वह जटिल, विरोधाभासी और परस्पर छोटे युद्ध तथा नफरती बयार से भर गई है। यह तब हो रहा है, जब पूरी दुनिया ज्ञान के नए आकाश को छू रही है। इस आसमान में आदमी प्रकृति तथा ब्रह्मांड के भेद को तो भेदना तो चाह रहा है, पर उसने अपनी भंग शांति में सब कुछ खो दिया है। संघर्षों के कर्म को समझना जीने के नए रास्तों को तय करने और ध्यान, योग की प्रवीण प्रवृत्तियों को सहज पूर्णता के कारण एक नई संस्कृतियों के दौर को स्वीकार करने, सम्मान करने तथा शांति से जीने की एक परंपरा हमारे समाज में है। यही समाज की खूबसूरती है, जिसमें विभिन्न समुदायों और विभिन्न रंग-रूप तथा भाषाओं के रंग-बिरंगे संजाल में लोग सदियों से रह रहे हैं।

यह अलग बात है कि गुलामी का भाव अपने जीने के अस्तित्व और युद्ध के दर्शन ने हमेशा इस धरती पर शांति को तार-तार किया है, लेकिन भारतीय जनमानस में करुणा, सहानुभूति, आत्म जागरूकता, विचारों तथा भावनाओं को ध्यान के जरिए नियंत्रित करना दरअसल शांति के लिए आत्म चिंतन की दूरदृष्टि है। इसको समझने की आज जितनी आवश्यकता है और शांति की प्रासंगिकता के अर्थ जितने प्रासंगिक आज हैं, उतने पहले कभी भी नहीं हुए थे।

असल में अपने विचारों को खुले से प्रस्तुत कर रहे संवाद पर शांतिपूर्ण तरीके से आत्म चिंतन करना इस दुनिया को तथा बदलते समाज को नई संभावनाओं से भर सकता है। शांति की गहराई में अंतर्दृष्टि की एक बहुआयामी अवधारणा व्यक्ति समाज और दुनिया के लिए इन दिनों अति महत्त्वपूर्ण है। यही एक ऐसा रास्ता है जो आत्मचिंतन को स्थिर करते हुए नए जीवन की अंतर्दृष्टियों के साथ चलते हुए हमें एक बेहतर कल की पीढ़ी के लिए एक सुंदर दुनिया की रूपरेखा तथा नई संरचना की ओर ले जा सकता है। हमारे यहां सभी धर्मों-परंपराओं में शांति का बखान है और सभी के लिए एक अरदास की आत्म दृष्टि और सकारात्मक जीने का खुला हुआ रास्ता है। एक ऐसा भाईचारा और ऐसी परिकल्पना का 'जोग-संजोग' का शांति-समय है, लेकिन यह भी सच है कि इस अंतर्दृष्टि में शांति पाने के जितने तरीके हमारे इतिहास और शास्त्रों में दर्शाए गए हैं, उनमें मन को संभालने के सवालों को ध्यान में सुलझा दिया गया है।

इन दिनों दुनिया में जो कुछ हो रहा है, वह अंतर्मुखी होकर अपने अहंकार से मुक्त आदमी को इस तेज भागते हुए विश्व की नई परिकल्पना में शांति की गुंजाइश से भर सकता है। यही जीवन जीने की एक नई दिशा का रास्ता है। आज दुनिया विरोधाभास, नए उपभोक्तावाद और आभासी दुनिया की नई परिकल्पना से नहीं, उसके डरावने यथार्थ से जूझ रही है। मन-मस्तिष्क की शांति और आत्मचिंतन की अंतर्दृष्टि ही इससे बचाव का रास्ता है जो हमें शांति समृद्धि और उस सुख की ओर ले जा सकता है, जिसमें जीवन की खोज में जिंदगी बची रहे। यही सवाल आज सबसे बड़ा है, जिसके लिए यह कोशिशें पूरी दुनिया में हो रही हैं, ताकि जिंदगी को युद्ध की तबाही से बचाया जा सके और आत्मचिंतन की शांति की अंतर्दृष्टि से आने वाली नस्लों के लिए इस रंग-बिरंगे विश्व को सुरक्षित रखा जा सके।

दुनिया मेरे आगे

> **आज दुनिया विरोधाभास, नए उपभोक्तावाद और आभासी संसार की नई परिकल्पना से नहीं, उसके डरावने यथार्थ से जूझ रही है। मन-मस्तिष्क की शांति और आत्मचिंतन की अंतर्दृष्टि ही इससे बचाव का रास्ता है जो हमें शांति समृद्धि और उस सुख की ओर ले जा सकता है, जिसमें जीवन की खोज में जिंदगी बची रहे।**

सभ्यता से दूर

समाज में जिस तरह अपराध के मामले बढ़ रहे हैं, वह चिंता का विषय है। क्या हो रहा है हमारे समाज को और कहां जा रहे हैं हम? कहीं से खबर आती है कि पिता ने अपने बेटे की हत्या कर दी, तो कहीं पर बेटे ने पिता को मार डाला, तो कहीं प्रेमी के संग मिल कर महिला ने पति की जान ले ली। या फिर मोबाइल न मिलने पर बेटी ने मां को मार डाला। महिलाओं और मासूम बच्चियों से बलात्कार के मामले हर रोज सामने आते हैं। निर्भया कांड के बाद जब लोग सदमे में थे, तब पूरा देश सड़कों पर उस दरिंदगी का विरोध कर रहा था। उस समय विरोध को देख कर यह उम्मीद जगी थी कि अब कभी ऐसा नहीं होगा, लेकिन हम गलत थे। उसके बाद भी उस तरह की घटनाएं लगातार हो रही हैं। अब समझ में नहीं आ रहा कि क्या हो रहा है यह सब! क्या हम अपने बच्चों को सही संस्कार नहीं दे पा रहे? क्या हम अपने बच्चों को समाज में रहने के सभ्य तौर-तरीके नहीं सिखा पा रहे? इन दिनों वेब शृंखला में हिंसा और अश्लीलता को खुल कर दिखाया जा रहा है।

- चरनजीत, नरेला, दिल्ली

भाषा पर राजनीति

मुंबई देश की वित्तीय राजधानी है। इससे भी बड़ी इसकी पहचान यह है कि हिंदी फिल्म उद्योग यहां पर है। हिंदी को दुनिया के हर कोने में पहुंचाने वाले ज्यादातर कलाकार यहीं रहते हैं। आज जन-जन तक और हर राज्य में हिंदी भाषा को जो सम्मान और प्यार मिला है उसी की महाराष्ट्र में घोर उपेक्षा हो रही है। उस पर राजनीति हो रही है। वैसे तो सभी भाषाओं का सम्मान किया जाना चाहिए, किंतु किसी का विरोध करके नहीं। आज हम कह सकते हैं कि हिंदी जो सब भाषाओं की बड़ी बहन है, वह अपनी छोटी बहन से हारती दिखती है। जिस प्रकार से सत्तारूढ़ दलों के साथ साथ विपक्ष हिंदी का अपमान कर रहा है, वह दिन दूर नहीं जब फिल्म उद्योग वहां से निकल कर किसी हिंदी प्रदेश में न आ जाए। सबसे ज्यादा डर हिंदीभाषी कर्मचारियों को लग रहा है। आज भाषा के नाम पर जिस तरह की राजनीति हो रही है, वह देश की एकता पर गहरी चोट है। यह दुखद है।

- आरके शर्मा, रोहिणी, दिल्ली

विलय का विरोध

देश भर में प्राथमिक शिक्षा की बदहाली किसी से छिपी नहीं है। इसमें सुधार के लिए उत्तर प्रदेश के परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में छात्र कम होने के कारण कुछ विद्यालयों का विलय किया जा रहा है। विरोध की राजनीति करने वाले दलों के वे कार्यकर्ता सड़कों पर हैं, जिनके स्वयं के बच्चे कभी इन विद्यालयों में नहीं पढ़े। विचारणीय यह भी है कि कितने नेताओं के बच्चे इन विद्यालयों में पढ़ते हैं? इन्हीं विद्यालयों में पढ़ाने वाले अध्यापकों व प्रशासन और शिक्षा विभाग से जुड़े अधिकारियों तथा कर्मचारियों के बच्चे क्या वहां पढ़ते हैं? वर्तमान में परिषदीय विद्यालयों में आधुनिक तकनीक के विशेषज्ञ अध्यापक-अध्यापिकाएं शिक्षण कार्य कर रहे हैं, फिर भी अभिभावक इन विद्यालयों में अपने बालकों को शिक्षा दिलाने से परहेज क्यों कर रहे हैं? इस विषय पर शायद ही किसी ने कभी सोचा हो। इस बात से सहमति जरूर हो सकती है कि स्कूल के अभाव में जरूरतमंद बच्चों की पढ़ाई बाधित न हो।

- सुधाकर आशावादी, मेरठ

परिचय के नाम पर

वरिष्ठ विद्यार्थियों द्वारा अगर नवागंतुकों से शालीनता से परिचय मांगा जाता है, तो यह गलत नहीं। मगर परिचय मांगने के नाम पर किसी का मजाक उड़ाया जाए या अभद्रता की जाए, तो यह सर्वथा अनुचित है। परिचय पूछने के नाम पर अगर किसी तरह की प्रताड़ना की जाती है, तो नया विद्यार्थी अवसाद में पहुंच जाता है। कई बार तो डर कर ऐसे छात्र कालेज दोबारा नहीं जाते। वर्तमान समय में नए विद्यार्थियों से परिचय लेने की परंपरा को गलत रूप दे दिया गया है। इसकी निंदा ही नहीं, कड़ी कार्रवाई भी होनी चाहिए। अगर नवागंतुक साथियों का सहजता से परिचय लेते हुए स्वागत किया जाता है और उसका उत्साह बढ़ाया जाता है, तो इसे प्रशंसनीय ही माना जाना चाहिए। मगर आजकल कालेजों में जिस तरह की रैगिंग की जा रही है, उससे अभिभावकों में भी चिंता पैदा हो गई है।

- मनमोहन राजावत 'राज', शाजापुर

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

दैनिक जागरण

सतर्कताविहीन तत्परता हानिकारक हो सकती है

घटिया निर्माण का नतीजा

हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले में बादल फटने से जो जन-धन हानि हुई, वह यही बता रही है कि अपने देश में और विशेष रूप से पर्वतीय इलाकों में बरसात के दिनों में कैसी विषम परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं। ये केवल इसलिए नहीं पैदा होतीं कि ज्यादा वर्षा हो गई, बाढ़ आ गई या भूस्खलन हो गया। ऐसी परिस्थितियां इसलिए भी पैदा होती हैं, क्योंकि सरकारी एवं गैर सरकारी निर्माण कार्यों की गुणवत्ता का स्तर बहुत ही घटिया है। इस पर न तो राज्य सरकारें गंभीरता से ध्यान दे रही हैं और न ही केंद्र सरकार, जिसकी कई परियोजनाएं राज्यों में जारी रहती हैं। ऐसा लगता है कि किसी का इस पर ध्यान ही नहीं कि यदि बुनियादी ढांचे से जुड़े निर्माण की गुणवत्ता पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तो जैसा हादसा मंडी अथवा शिमला में हुआ, वैसे होते ही रहेंगे और उनका दोष प्रकृति पर मढ़कर कर्तव्य की इतिश्री कर ली जाएगी। बात केवल हिमाचल की ही नहीं है, उत्तराखंड में भी कुछ स्थानों पर भूस्खलन होने से तीर्थयात्री संकट में पड़े हैं। आने वाले दिनों में इस तरह के दुखद समाचार रह-रहकर देखने-सुनने को मिल सकते हैं। ऐसे समाचार देश के गैर पर्वतीय राज्यों से भी आएंगे, क्योंकि तनिक सी बरसात बुनियादी ढांचे के निर्माण की पोल खोलने का काम करती है। पोल मुंबई जैसे महानगरों के शहरी ढांचे की भी खुलती है और देश की राजधानी दिल्ली की भी।

इसका कोई मतलब नहीं कि हम बार-बार विकसित भारत की बात करें, लेकिन सरकारी निर्माण कार्यों की गुणवत्ता की अनदेखी करें और मानक होते हुए भी उनका पालन न करें। इस तरह से तो हम विकसित देश नहीं बन सकते। ज्यादा बारिश, भूस्खलन आदि की घटनाएं विकसित देशों में भी होती हैं, लेकिन वहां सरकारी एवं निजी लोगों की ओर से कराए गए निर्माण कार्य की गुणवत्ता बेहतर होती है। इसीलिए वहां हादसे और उनमें जान गंवाने वाले लोगों की संख्या कम होती है। पता नहीं क्यों हम विकसित देशों से कुछ सीखने से क्यों इन्कार कर रहे हैं? इस इन्कार के लिए राज्यों और केंद्र सरकारों के साथ उनकी नौकरशाही सीधे तौर पर जिम्मेदार है। बुनियादी ढांचे के निर्माण से जुड़े सरकारी विभाग भयंकर किस्म के भ्रष्टाचार से ग्रस्त हैं। इसी कारण नए बने भवन में लीकेज होने लगता है और पुल उद्घाटन से पहले ही ढह जाते हैं। इस सच से पहले के नीति नियंता भी अवगत थे और वर्तमान के भी। अच्छा हो कि वे चेत जाएं और निर्माण कार्यों के लिए बनाए गए मानकों का पालन सुनिश्चित कराएं। इससे ही सरकारी के साथ-साथ निजी निर्माण कार्यों की गुणवत्ता भी सुधरेगी। समझना कठिन है कि इस जरूरी काम को प्राथमिकता देने में क्या कठिनाई है?

श्रमशक्ति का मान

'उत्तर प्रदेश रोजगार मिशन' का गठन रोजगार के क्षेत्र में उभरी चुनौतियों का भी समाधान देगा। उत्तर प्रदेश कैबिनेट ने इसके गठन की स्वीकृति देकर एक नई आस जगाई है। वैसे तो इस मिशन का मुख्य उद्देश्य रोजगार के कार्यक्रम का सृजन है, परंतु इसी कड़ी में विदेश में रोजगार की लालसा पाले युवाओं को इस मिशन से सामाजिक सुरक्षा भी मिलेगी। भारत की श्रमशक्ति की मांग दूसरे देशों में हमेशा से रही है। अब तक श्रमिकों को विदेश भेजने का काम सीधे श्रम एवं सेवायोजन विभाग नहीं करता था। यह भी निरंतर देखने में आ रहा है कि जिन शर्तों पर नौकरी का प्रलोभन देकर श्रमिकों को विदेश पहुंचाया जाता था, उसमें कई बार धोखा हुआ है। श्रमिकों का पासपोर्ट आदि जमा कराकर उन्हें विदेश में बंधक तक बना लिए जाने के मामले सामने आए हैं। बड़ी संख्या में ऐसे पीड़ित सामने आ रहे हैं। ऐसे में इस मिशन के गठन से इन विसंगतियों पर विराम लगेगा। विदेश में नियोजन सुरक्षा सुनिश्चित होगी। नव गठित मिशन के माध्यम से वैसे प्रशिक्षण प्रकल्प भी विकसित होंगे, जिनमें रोजगार की ज्यादा संभावना होगी। इतना ही नहीं, आपात स्थिति में मदद के लिए विदेश जाने वाले श्रमिकों का रिकार्ड भी रखा जाएगा। विभाग ने एक साल पूर्व कौशल विकास के तहत छह हजार श्रमिकों को इजरायल भेजा था। इन श्रमिकों ने एक हजार करोड़ रुपये अपने परिवारों को भेजा है। ऐसे प्रयासों से निश्चित रूप से श्रमशक्ति का मान बढ़ेगा। उम्मीद की जा रही है कि तत्काल सवा लाख रोजगार सृजन की सरकार की तैयारी कई घरों के द्वार पर शुभ-लाभ का संयोग लाएगी। अन्य राज्यों को भी इससे सीख लेने की आवश्यकता है।

> रोजगार के क्षेत्र में एक मिशन आरंभ करने के इस प्रयास से श्रमिकों के लिए विसंगतियां थमेंगी और इससे विदेश में नियोजन की सुरक्षा भी सुनिश्चित होगी

विश्व शांति के लिए भी खतरा है पाकिस्तान

राजा मुनीब

पाकिस्तान को पहलगाम ही नहीं, बल्कि दशकों से थोपे छद्म युद्ध में गंवाई हर एक जान के लिए जिम्मेदार-जवाबदेह बनाकर न्याय के कठघरे में खड़ा किया जाए

अवधेश राजपूत

पहलगाम के आतंकी हमले ने द्विपक्षीय समीकरण ही नहीं, बल्कि समूचे दक्षिण एशिया में संबंधों के तानेबाने को प्रभावित किया है। इस हमले ने आतंक की नीति को जारी रखने वाली पाकिस्तानी मंशा को प्रकट किया था। पर्यटकों से उनकी मजहबी पहचान पूछकर की गई हत्याओं को लश्कर के पिट्ठू संगठन द रेजिस्टेंस फ्रंट यानी टीआरएफ ने अंजाम दिया। इसे केवल एक नरसंहार के रूप में न देखा जाए। यह भू-राजनीतिक उकसावे की एक सुनियोजित कार्रवाई थी। इसने जहां आतंक को पालने-पोसने वाले पाकिस्तान के कलंकित इतिहास को दोहराया, वहीं इसके पीछे की एक मंशा जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा ढांचे को अस्थिर करने की भी थी। वैश्विक निगरानी और अंतरराष्ट्रीय दबाव के बावजूद पाकिस्तान ने अपनी जमीन पर संचालित आतंकी ढांचे को समाप्त नहीं किया है। पहलगाम हमला भी उसी पुराने ढर्रे पर किया गया, जहां सेना-आइएसआइ की आतंकी करतूत से इस्लामाबाद ने आदतन किनारा कर लिया। इसमें किसी को कोई संदेह नहीं हो सकता कि पाकिस्तान के शीर्ष नेतृत्व की हरी झंडी के बिना ऐसे किसी हमले को अंजाम दिया गया होगा। पहलगाम हमले के बाद भारत ने आर्थिक, कूटनीतिक और सामरिक मोर्चों पर बहुत कारगर कदम उठाए और पाकिस्तान को करारा जवाब दिया। दूसरी ओर, पाकिस्तान लकीर पीटने वाले ढर्रे पर चलते हुए बस शेखी बघारता रहा। भारत ने जहां सिंधु जल समझौते को ठंडे बस्ते में डालकर पाकिस्तान और उसकी आर्थिकी की कमर तोड़ने वाला दांव चला, वहीं पाकिस्तान शिमला समझौते से पीछे हटने का निरर्थक राग अलापता रहा।

कश्मीर में दशकों की अस्थिरता से उबरते हुए पटरी पर आ रही पर्यटन गतिविधियां आतंकी हमले के बाद फिर से अनिश्चितता के भंवर में फंस गई हैं। हालांकि इसका आर्थिक खामियाजा जम्मू-कश्मीर से परे समूचे दक्षिण एशिया को भुगतना पड़ रहा है। इस पृष्ठभूमि में भारत-पाकिस्तान, दोनों ने व्यापार, निवेश और वीजा आदि के मोर्चे पर जो कदम उठाए हैं, उससे क्षेत्रीय सहयोग के साथ ही आर्थिक-व्यापारिक गतिविधियों पर भी ग्रहण लगा है। इस तरह एक देश की आतंक समर्थक नीतियों की कीमत पूरे क्षेत्र को अपनी शांति एवं समृद्धि गंवाने के रूप में चुकानी पड़ रही है। यहां तक कि पाकिस्तान के इस रवैये का दंश वहां की जनता को भी भुगतना पड़ रहा है। उसे फर्जी राष्ट्रवाद की घुट्टी पिलाई जा रही है। भले ही पाकिस्तान खुद को आतंक से पीड़ित दिखाने का प्रयास करता रहे, लेकिन उसकी पहचान आतंक से निपटने में शिथिलता दिखाने वाले देश की ही है। करीब ढाई माह पुराने पहलगाम हमले ने आतंकी गतिविधियों के मामले में पाकिस्तान को लेकर अंतरराष्ट्रीय चिंताओं को नए सिरे से उभारने का काम किया है। पूर्व में पाकिस्तान को ग्रे लिस्ट में रखने वाली एफएटीएफ जैसी संस्था के समक्ष भी पाकिस्तान पर अंकुश लगाने का दबाव बढ़ेगा। इससे पाकिस्तान की छवि और खराब होगी। आर्थिक निवेश और विकास को लेकर उसकी उम्मीदों को पलीता लगेगा।

पहलगाम हमला पाकिस्तान के आतंकी चरित्र में एक खतरनाक बदलाव का भी परिचायक है। 2001 की शुरुआत से पाकिस्तान पोषित आतंकियों ने मुख्य रूप से जम्मू क्षेत्र को निशाना बनाते हुए सैन्य बलों पर ही हमले किए। अनुच्छेद 370 की समाप्ति के बाद पहलगाम हमला कश्मीर में हुई पहली बड़ी आतंकी वारदात रही। हिंदुओं को निशाना बनाने के पीछे भी कुत्सित सोच एकदम स्पष्ट रहा कि देश में सामाजिक वैमनस्य बढ़े और कश्मीर में सरकार का विकास एजेंडा पटरी से उतरे। भारत ने इसे बखूबी समझा। इसका असर हमले के बाद की प्रतिक्रिया में भी झलका। भारत ने बहुस्तरीय रणनीति अपनाते हुए खुफिया मोर्चे को और चाकचौबंद किया, जमीनी स्तर पर सुरक्षाकर्मियों की तैनाती बढ़ाई और किसी भी संभावित आतंकी हमले को निस्तेज करने के लिए अभियान तेज किए, विशेष तौर पर अमरनाथ यात्रा की सुरक्षा को लेकर। चूंकि जम्मू-कश्मीर में अभी भी सैकड़ों पाकिस्तान समर्थक आतंकी सक्रिय हैं, इसलिए सुरक्षा बलों की चुनौती काफी कड़ी होने वाली है। इस समय भले ही दोनों देशों के बीच युद्धविराम जैसी स्थिति हो, लेकिन पाकिस्तान अपने आतंकी पिट्ठुओं को एक रणनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल करता रहेगा। भारत ने जिस तरह सिंधु जल समझौते को स्थगित रखने की दृढ़ता दिखाई है, उसके चलते इसकी भरी-पूरी आशंका है कि आतंकी जम्मू-कश्मीर में किसी अहम इन्फ्रास्ट्रक्चर ढांचे को निशाना बनाएं ताकि भारत सरकार कुछ दबाव में आए और कश्मीर का मुद्दा अंतरराष्ट्रीय पटल पर छाए।

भारत ने इरादे एकदम स्पष्ट कर दिए हैं कि भविष्य में कोई आतंकी हमला युद्ध के लिए उकसाने वाले कृत्य के रूप में देखा जाएगा। किसी हमले की सूरत में दोनों देश फिर से आमने-सामने आ सकते हैं। इससे अंतरराष्ट्रीय दबाव और संभावित मध्यस्थता प्रयासों के लिए गुंजाइश बनेगी। यह भी एक पहलू है जो पाकिस्तान की नापाक कश्मीर नीति से जुड़ा है। भारत के दृष्टिकोण से पहलगाम हमला केवल एक त्रासदी भर नहीं, बल्कि एक निर्णायक मोड़ रहा। ऐसा मोड़, जिसने भविष्य में किसी भी पाकिस्तानी आतंकी कृत्य से निपटने की उसकी दिशा को निर्धारित किया है। पाकिस्तान के आतंकी चरित्र ने न केवल दक्षिण एशिया की शांति में खलल डाला है, बल्कि वैश्विक सुरक्षा के लिए भी वह नासूर बन गया है। उससे निपटने की आधी-अधूरी कार्रवाई से बात नहीं बनने वाली। उसके साथ कूटनीतिक सक्रियता का समय भी अब निकल गया। पाकिस्तान में सक्रिय आतंकी ढांचे को ध्वस्त किए बिना दक्षिण एशिया में शांति संभव नहीं। समय आ गया है कि पाकिस्तान को केवल पहलगाम के लिए ही नहीं, बल्कि दशकों से चले आ रहे छद्म युद्ध में गंवाई हर एक जान के लिए जिम्मेदार और जवाबदेह बनाकर न्याय के कठघरे में खड़ा किया जाए।

(लेखक जियो-पालिटिक्स एवं राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े मामलों के विशेषज्ञ हैं)
response@jagran.com

अपनी तकदीर बदलने वाली महिलाएं

स्वरित पचौरी

स्वयं सहायता समूहों से जुड़कर महिलाएं सशक्त हो रही हैं और उन्हें एक नई पहचान भी मिल रही है

हाल की कई रिपोर्ट में यह बात आई है कि देश में महिलाओं में स्वरोजगार बढ़ा है। एक आंकड़े के अनुसार वित्त वर्ष 2023-24 में भारत में महिलाओं की श्रम शक्ति भागीदारी 37 प्रतिशत हो गई। यह बढ़त मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक दिखी है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका प्रमुख कारण महिलाओं के आत्मनिर्भर होने और किसी न किसी स्वयं सहायता समूह से जुड़ा होना समझा जाता है। इन स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) को पिछले दस वर्षों में दीनदयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत सशक्त किया गया है। उत्तर प्रदेश के अमरोहा जिले का गजरौला ब्लाक इन तथ्यों की पुष्टि कर रहा है। यहां पिछले दो वर्ष से 'दीदी की दुकान' पहल के अंतर्गत चयनित एसएचजी की महिलाओं को व्यवसाय एवं उद्यमशीलता में प्रशिक्षण दिया जा रहा है, जिससे कई 'उद्यमी दीदी' अपनी दुकान चला रही हैं। बी-एबल फाउंडेशन की एक परियोजना के तहत इस प्रोजेक्ट की शुरुआत हुई थी, जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के संगठित एसएचजी से इन महिलाओं को चुना गया। अन्य महिलाएं भी इस पहल का हिस्सा हैं, जो किसी एसएचजी से नहीं जुड़ी हुई हैं।

दीदी की दुकानों की खास बात यह है कि परचून और रोजमर्रा के राशन के सामान के साथ-साथ इनमें महिलाओं की जरूरतें संबंधी वस्तुएं भी मिलती हैं। इन दुकानों में सैनेटरी नैपकिन भी उपलब्ध हैं, जिन्हें लड़कियां, महिलाएं बिना हिचक खरीदती हैं। इन दुकानों पर रंग बिरंगी चूड़ियां, राखियां, सिलाई-कढ़ाई आदि के सामान भी खूब मिलते हैं। एक दीदी की दुकान में फ्रिज होने से कोल्ड ड्रिंक्स, शरबत और डेरी का सामान है। कई दुकानों में गिफ्ट आइटम भी बिकते हैं। इन दुकानों को कुछ निजी कंपनियों ने अलमारी, रैक और काउंटर टेबल अपने कारपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व-सीएसआर के तहत उपलब्ध कराए हैं। कई 'उद्यमी दीदी' महीने में 20 से 25 हजार रुपये कमा लेती हैं। इस पहल के अंतर्गत दीदियों को इसके लिए प्रोत्साहित किया गया है कि वे हर प्रकार का सामान अपनी दुकानों पर रखें, ताकि गांव वालों को न तो साप्ताहिक हाट-बाजारों पर निर्भर रहना पड़े और न ही शहर पर। इस योजना से सबसे बड़ा बदलाव यह आया है कि महिलाएं आगे आकर दुकानों का कारोबार संभाल रही हैं, जो एक जमाने तक सिर्फ पुरुषों का ही व्यवसाय माना जाता था। इससे कई प्रकार की लैंगिक रूढ़िवादिताएं बदली हैं। अब न केवल महिलाएं आर्थिक तौर पर सशक्त हो रही हैं, बल्कि उनकी सामाजिक गतिशीलता में भी बदलाव आया है।

दीदी की दुकान चलाती एक ग्रामीण महिला। फाइल

स्वयं सहायता समूहों और उद्यमता से सशक्त हो रही महिलाएं बताती हैं कि उन्हें एक नई पहचान मिली है और अब उनकी भी एक 'आइडेंटिटी' है। यह एक बड़ा बदलाव है। तमाम रिसर्च बताती हैं कि इस तरह की पहल से महिलाओं के आत्मसम्मान में बढ़ोतरी होती है। जैसे कि एक दीदी बताती हैं कि पहले वे अपने घर से बाहर नहीं निकलती थीं, पर अब उनकी दुकान गांव का एक अहम 'लैंडमार्क' बन गई है। यदि किसी को आनलाइन या डाक से कुछ मंगवाना हो तो वह 'दीदी की दुकान' के पते पर पहुंच जाता है। इस तरह ये दीदियां सिर्फ गांव की जरूरतें ही नहीं, बल्कि एक प्रकार से गांव की आकांक्षाओं और आर्थिक सशक्तीकरण की 'ब्रांड एंबेसडर' जैसी बन गई हैं। इस प्रोजेक्ट को यूनिसेफ की भी मदद मिल रही है। जैसे प्रत्येक माह सबसे अधिक बिक्री करने वाली दीदी को बैटरी से चलने वाला एक पंखा यूनिसेफ के सौजन्य से भेंट किया जाता है।

अगले कुछ महीनों में यूनिसेफ और ग्रामीण विकास मंत्रालय की मदद से इस प्रोजेक्ट को और राज्यों में शुरू किया जाएगा, जिसमें कंप्यूटर दीदी सेंटर्स की भी शुरुआत होगी। अन्य राज्यों में भी ऐसे प्रोजेक्ट्स हैं जैसे झारखंड आजीविका की 'दीदी की दुकान', बिहार में 'दीदी की रसोई'। कर्नाटक में नारी उद्यमिता को बढ़ावा देते हुए सहगल फाउंडेशन के अंतर्गत 'अमृत स्टाल' चलाए जा रहे हैं, जो महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने पर केंद्रित हैं। महिला उद्यमिता की ऐसी योजनाएं लैंगिक समानता एवं सतत विकास लक्ष्य पांच के तहत सुचारु रूप से अपना योगदान दे रही हैं, लेकिन कुछ बिंदुओं पर और काम हो सकता है। अभी बी-एबल फाउंडेशन इन सभी दीदियों को व्यवसाय प्रबंधन, वित्तीय साक्षरता आदि की ट्रेनिंग देता है, लेकिन इस पर और काम किया जा सकता है। महिलाओं को और अधिक डिजिटल प्रशिक्षण दिलवाया जा सकता है। इन दुकानों पर खिलौने रखे जा सकते हैं, जिससे 'मेक इन इंडिया', 'वोकल फार लोकल' जैसी योजनाओं को और मजबूती मिले। हस्तशिल्प और वन डिस्ट्रिक्ट-वन प्रोडक्ट के ऐसे उत्पाद भी इन दुकानों पर रखे जा सकते हैं, जिनकी ग्रामीण इलाकों में मांग हो। महिलाओं को अधिक लोन सुविधाओं से जोड़ा जाना चाहिए। एक अहम मुद्दा जंक फूड से जुड़ा है। इन दुकानों पर मोटे अनाज से बने पौष्टिक खाद्य पदार्थ रखे जा सकते हैं।

(लेखिका न्यूयार्क स्टेट के कार्नेल विश्वविद्यालय में पब्लिक पालिसी पढ़ाती हैं)
response@jagran.com

ऊर्जा

आत्मानुशासन

स्वयं को हर परिस्थिति में नियंत्रण की डोर से बांधे रखना ही आत्मानुशासन कहलाता है। जीवन यात्रा इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं लालसाओं से भरी है। इस यात्रा में प्राप्त होने वाली छोटी-बड़ी उपलब्धियां हमारे भीतर और अधिक की चाह उत्पन्न कर देती हैं। ऐसी लिप्सा इतनी अनियंत्रित होती है कि यह हमारे अंतर्मन को अशांत एवं अस्थिर करने में एक बड़ी भूमिका निभाने लगती है। ऐसी दशा में हम जीवन के वास्तविक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से कहीं न कहीं भटकने लगते हैं। आत्मानुशासन एक ऐसा गुण है, जो हमें संयम के मार्ग पर चलते हुए उन्नति की दिशा में कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है। अपनी सभी इंद्रियों पर नियंत्रण की एक सहज लगाम लगा देना ही आत्मानुशासन है, किंतु यह लगाम हम स्वेच्छा का सहारा लेकर ही लगा सकते हैं।

किसी भी दशा में इच्छाओं एवं उत्कंठाओं का दमन करके आत्मानुशासन के गुण को विकसित नहीं किया जा सकता। इसके उलट जब हम अपनी किसी भी आदत अथवा लत के दुष्परिणामों के बारे में सोचने लगते हैं तो एक गहन मंथन के उपरांत हमारे अंदर स्वतः यह विचार उत्पन्न हो जाता है कि हमें उस आदत, लालसा अथवा इच्छा को त्याग देना चाहिए। बस यहीं से आत्मानुशासन के विकास की शुरुआत हो जाती है। एक अनुशासित व्यक्तित्व पवित्र, परिष्कृत एवं परिमार्जित होता है, क्योंकि वह सद्गुणों को ही आकर्षित करता है। दुर्गुणों के लिए उसके अंदर कोई स्थान शेष नहीं रह जाता।

आत्मानुशासन को अपनाकर हम किसी तरह के बंधन का अनुभव नहीं करते, अपितु एक अद्भुत स्वतंत्रता का आभास हमें प्रति क्षण होता रहता है। इसके विपरीत आत्मानुशासन के अभाव में जीवन जटिलताओं से भर जाता है। जीवन में दीर्घकालिक प्रसन्नता अर्जित करने के लिए हमें आत्मानुशासन को अपने भौतिक शरीर के साथ-साथ अंतर्मन एवं अंतरात्मा से भी जोड़ना होगा।

प्रेरणा अवस्थी

सौरमंडल के बाहर से आया तीसरा मेहमान!

प्रदीप

> एक ऐसे दुर्लभ खगोलीय पिंड का पता चला है जो सौरमंडल के बाहर से आया है

हाल ही में खगोलविदों को हमारे सौरमंडल से होकर गुजरने वाले एक दुर्लभ खगोलीय पिंड का पता चला है जो सौरमंडल के बाहर से आया है। अंतरराष्ट्रीय खगोलीय संघ ने इसे '3आई/ एटलस' नाम दिया है। यह हमारे सौरमंडल में प्रवेश करने वाला तारों के बीच या अंतरतारकीय अंतरिक्ष से आया तीसरा ज्ञात मेहमान है, जो किसी अन्य तारामंडल से आया हुआ भटकता यात्री प्रतीत होता है। इससे पहले 2017 और 2019 में दो अंतरतारकीय पिंड (इंटरस्टेलर आब्जेक्ट) हमारे सौरमंडल से होकर गुजर चुके हैं। फिलहाल यह नया अंतरतारकीय मेहमान खगोलशास्त्रियों के लिए उत्साह का केंद्र बना हुआ है और दुनियाभर की खगोलीय वेधशालाएं जिज्ञासावश अपनी दूरबीनों को इसी मेहमान की दिशा में मोड़ रही हैं।

एक जुलाई को नासा के एटलस दूरबीन ने चिली के रियो हर्टाडो में इस रहस्यमय पिंड को पहली बार देखा। शुरुआत में इसे 'ए 11 पीएल 3 जेड' के नाम से जाना गया, लेकिन बाद में अंतरराष्ट्रीय खगोलीय संघ माइनर प्लैनेट सेंटर ने इसका नाम बदलकर 3आई/ एटलस' कर दिया। '3आई' से पता चलता है कि यह तीसरा ज्ञात अंतरतारकीय पिंड है। यूरोपीय अंतरिक्ष संस्था (ईएसए) ने इसकी पुष्टि करते हुए बताया है कि इस पिंड का प्रक्षेप पथ और गति इसके अंतरतारकीय उद्गम को दर्शाते हैं। इसकी कक्षा हाइपरबोलिक है, जिसकी विकेंद्रता (एक्सेंट्रिसिटी) छह से 11.6 के बीच है, जो सौरमंडल के आम पिंडों की तुलना में कहीं ज्यादा है। इससे यह पता चलता है कि यह पिंड सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से बंधा नहीं है। वर्तमान में यह क्षुद्रग्रह बेल्ट और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच स्थित है, और तेजी से आंतरिक सौरमंडल की ओर बढ़ रहा है।

विज्ञानियों का मानना है कि सूर्य के अलावा अन्य तारों के भी ग्रह, उपग्रह, क्षुद्र ग्रह और धूमकेतु हो सकते हैं। अपने सौरमंडल के सदस्यों के बारे में भले ही हम काफी कुछ जानते हैं, लेकिन सौरमंडल के सबसे दूर स्थित एक विशाल और गोलाकार बादल, जिसे 'ऊर्ट क्लाउड' कहा जाता है, को अभी हम बहुत कम जान पाए हैं। एक रोबोटिक दूरबीन के माध्यम से 3आई/ एटलस की तस्वीर कैप्चर की गई है, जिसमें यह एक स्थिर प्रकाश बिंदु की तरह दिखाई दिया, जिससे यह पता चलता है कि यह पत्थर से ज्यादा बर्फ से बना हो सकता है, जो इसे धूमकेतु की श्रेणी में रख सकता है।

बहरहाल, सौरमंडल के बाहर से आए इस तीसरे मेहमान की खोज कई मायनों में महत्वपूर्ण है। एक तो यह कि यह हमें अन्य तारामंडल प्रणालियों की संरचना और गतिशीलता को समझने का अवसर देता है। इसकी बर्फीली संरचना और विलक्षण गति हमें उन परिस्थितियों के बारे में बताती है, जो किसी अन्य तारे के इर्दगिर्द विद्यमान हो सकती हैं। दूसरा, इस खोज से यह भी पता चलता है कि ब्रह्मांड में ऐसे पिंड हजारों की संख्या में हो सकते हैं, जो सौरमंडल में आते-जाते हैं, लेकिन हमारी नजरों से बच निकलते हैं।

(लेखक विज्ञान संचारक हैं)

मेलबाक्स

सुधारों की बाट जोहती शिक्षा व्यवस्था

'सुधार के नाम पर शिक्षा से खिलवाड़' शीर्षक से लिखे आलेख में प्रेमपाल शर्मा ने एक महत्वपूर्ण विषय के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित किया। किसी भी सरकार द्वारा स्कूलों की संख्या को घटाना उचित नहीं। इससे शिक्षा तक पहुंच की सुगमता घटेगी तो दूसरी ओर निजी स्कूलों पर निर्भरता बढ़ेगी, जो समाज के एक वर्ग के लिए बहुत भारी साबित होगी। ऐसे में शिक्षा का बढ़ता निजीकरण एक लोककल्याणकारी सरकार के उद्देश्यों पर प्रश्न चिह्न लगाता है। शिक्षा मानव संसाधन विकास से जुड़ी है। इसकी उपलब्धता को लेकर राज्य को अपने स्तर पर हरसंभव प्रयास करने चाहिए। योग्य शिक्षकों का अभाव भी चिंताजनक है। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की कमी पूरे देश में दिखती है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा व्यवस्था में सैद्धांतिक रूप से काफी परिवर्तन की वकालत की गई है, लेकिन नीति के लागू हुए पांच वर्षों के पश्चात भी धरातल पर ऐसा कुछ नहीं दिख रहा है। यदि देश को विकसित राष्ट्र बनाना है तो शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन करने ही होंगे। अन्यथा यह लक्ष्य प्राप्त करना संभव नहीं होगा।

संदीप रौशन, मुजफ्फरपुर, बिहार

विपक्ष का आधारहीन विरोध

बेतुके विरोध की पराकाष्ठा- शीर्षक से शुक्रवार को प्रकाशित अग्रलेख पढ़ा। वास्तव में देश की विपक्षी पार्टियों को इस पर गहराई से चिंतन करने की आवश्यकता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में विपक्ष की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। सरकार की नीतियों व निर्णयों का विवेचन करना और जनहित से जुड़े मुद्दों को मुखरता से उठाना विपक्ष का संवैधानिक अधिकार है। किंतु जब विरोध का आधार तर्कहीन और बेतुका हो, तो वह न केवल लोकतंत्र को हास्यास्पद बनाता है, बल्कि विपक्ष की गंभीरता और विश्वसनीयता पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। हाल ही में चुनाव आयोग द्वारा बिहार में मतदाता सूचियों की गहन जांच के आदेश दिए गए हैं, ताकि फर्जी मतदाताओं को सूची से हटाया जा सके और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित किए जा सकें। यह कोई नई या असाधारण प्रक्रिया नहीं है। पूर्व में भी विभिन्न राज्यों में इस प्रकार के परीक्षण होते रहे हैं, जिनका सभी राजनीतिक दलों ने स्वागत किया था। किंतु इस बार कांग्रेस सहित कुछ विपक्षी दलों ने जिस तरह का अनावश्यक शोर-शराबा और विरोध प्रदर्शन किया है, वह न केवल बेतुका है, बल्कि देश की जागरूक जनता का भी अपमान है। जनता समझ रही है कि असल मुद्दों से भटक कर विपक्ष केवल विरोध के लिए विरोध कर रहा है।

सुरेश गोयल, हिसार, हरियाणा

वैज्ञानिक सोच वाली नीतियां

शोध और विकास की बाधाएं दूर होने की आस- शीर्षक से चार जुलाई को प्रकाशित आलेख में आदित्य सिन्हा ने शोध पर अधिक केंद्रित होने की बात कही है। इसके साथ ही हायर सेकेंडरी से ही शोधार्थी छात्रों का चयन करके उन्हें इस क्षेत्र में आगे बढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिए। बीसवीं सदी में अमेरिका के महाशक्ति बनने के पीछे उसकी विज्ञान केंद्रित नीतियों की निर्णायक भूमिका रही। नेशनल साइंस फाउंडेशन और डारपा जैसे संस्थानों के माध्यम से अमेरिका ने रक्षा, अंतरिक्ष और स्वास्थ्य क्षेत्रों में दूरदर्शी निवेश किया, जिससे न केवल समृद्धि के नए द्वार खुले, बल्कि वैश्विक प्रभुत्व भी स्थापित हुआ। आज चीन भी इसी राह पर चलते हुए शोध एवं विकास को प्राथमिकता देकर तकनीकी महाशक्ति बन चुका है। इसके विपरीत भारत में शोध का उद्देश्य प्रायः डिग्री प्राप्ति तक सीमित रह गया है। विषय चयन, अध्ययन पद्धति और शोध की दिशा अक्सर व्यावहारिक परिणाम देने में विफल रहती है। ऐसे में समय आ गया है कि हम अपने शैक्षणिक ढांचे में आमूल बदलाव करें। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसी तकनीकों को स्कूली शिक्षा से ही शामिल कर, छात्रों को नवाचार, विश्लेषण और अनुप्रयोग की ओर प्रेरित किया जाए। बारहवीं के बाद विषयों का चयन महज अंक नहीं, बल्कि रुचि और संभावनाओं के आधार पर हो। शोध कार्य केवल किताबी ज्ञान तक सीमित न रहकर ठोस परिणाम देने वाले होने चाहिए।

सुभाष बुड़ावन वाला, रतलाम, मध्य प्रदेश

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें:
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: response@jagran.com

संस्थापक- स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक- स्व. नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन- महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक- संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष: नई दिल्ली कार्यालय: 011-43166300, नोएडा कार्यालय: 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।
****

46 प्रतिशत का योगदान ग्रामीण अर्थव्यवस्था करती है राष्ट्रीय आय में, आर्थिक सर्वेक्षण 2022-23 के अनुसार, जबकि आर्थिक सर्वेक्षण 2023-24 के अनुसार, भारतीय आर्थिकी में कृषि का योगदान 18-19 प्रतिशत तक ही है।

डा. अश्विनी महाजन
पूर्व प्रोफेसर, पीजीडीएवी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

आजकल

भारत-अमेरिका के बीच मुक्त व्यापार समझौता

भारत अमेरिका मुक्त व्यापार समझौते पर वर्ष 2017 से ही चर्चा चल रही है, लेकिन अभी तक इसे मूर्त रूप नहीं मिल पाया है। तमाम बाधाओं के कारण यह संभव नहीं हो पा रहा है। इस बीच पिछले माह से खबरें आईं कि भारत-अमेरिका एफटीए पर हस्ताक्षर होने वाले हैं, परंतु कतिपय कारणों से ऐसा संभव नहीं हुआ। हालांकि डोनाल्ड ट्रंप के अमेरिकी राष्ट्रपति बनने के बाद से यह चर्चा फिर आगे बढ़ी। लिहाजा यह विषय फिर से सुर्खियों में है। ऐसे में हमें इस समझौते की राह में आने वाली बाधाओं को और व्यावहारिकताओं को भी समझना चाहिए

प्रतीकात्मक

डोनाल्ड ट्रंप ने जबसे अमेरिका में सत्ता की बागडोर संभाली है, तब से यह चर्चा हो रही है कि भारत अमेरिका मुक्त व्यापार समझौते की ओर दोनों देश फिर से आगे बढ़ सकते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि ट्रंप ने अपने व्यापार भागीदारों पर पारस्परिक शुल्क लगाने का फैसला किया, जिससे अब शुल्क अमेरिका के लिए डब्ल्यूटीओ द्वारा सहमत बाध्य दरों के आधार पर नहीं, बल्कि राष्ट्रपति ट्रंप की सनक के आधार पर, पारस्परिकता के तथाकथित विचार पर तय किए जा रहे थे। अमेरिका अपने व्यापार भागीदारों पर अमेरिकी उत्पादों पर उनके द्वारा लगाए गए शुल्क को कम करने और अमेरिका के साथ व्यापार समझौता करने के लिए दबाव डालता हुआ दिखाई दिया, ताकि अमेरिका द्वारा पारस्परिक शुल्क लगाए जाने से बचा जा सके। ऐसी परिस्थितियों में व्यापार विशेषज्ञ, जो मुक्त व्यापार के समर्थक माने जाते हैं, उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि अमेरिका के साथ व्यापार समझौता करने का यह सही समय है, अब एफटीए के पक्ष में तर्क दिया जा रहा है, ताकि हम पारस्परिक शुल्क से बच सकें और अमेरिका के साथ पूर्ण मुक्त व्यापार समझौते के आधार पर भारत-अमेरिका व्यापार को बढ़ावा दे सकें।

हालांकि भारत-अमेरिका व्यापार समझौते में एक बार फिर से बाधा आ गई है। इस बार तथाकथित अवरोध भारत के इस स्पष्ट रुख से आया है कि वह जीएम खाद्य उत्पादों के आयात की अनुमति नहीं दे सकता, जबकि अमेरिका जीएम खाद्य उत्पादों के लिए भारत के बाजार को खोलने पर जोर दे रहा है, और अमेरिकी व्यवसायों द्वारा भारत में डाटा होस्ट करने के लिए सर्वर की अनुमति नहीं देने के खिलाफ डाटा स्थानीयकरण पर हमारा जोर समेत कुछ अन्य मुद्दों के कारण प्रस्तावित एफटीए फिर से खटाई में पड़ता दिखाई दे रहा है।

अड़चनों का इतिहास : वर्ष 2006-08 के आसपास रणनीतिक और वाणिज्यिक संबंधों को मजबूत करने की व्यापक बातचीत के बीच भारत-अमेरिका एफटीए का विचार सामने आया था। हालांकि, प्रमुख मतभेदों के कारण कोई औपचारिक वार्ता शुरू नहीं हुई। अमेरिका भारतीय बाजारों में विशेष रूप से खुदरा, कृषि आदि में अधिक पहुंच और रियायतें चाहता था, जिसे हम डब्ल्यूटीओ प्लस कहते हैं। लेकिन भारत के इस रुख के कारण, कि इस समझौते से नीतिगत गुंजाइश खत्म हो सकती है।

कई विशेषज्ञ भारत-अमेरिका व्यापार समझौते के प्रारूप के बारे में चिंता जता रहे हैं, हमें अमेरिका की मांगों को समझने की जरूरत है, और किसी एक या अधिक मुद्दों पर झुकने से भारत को कैसे नुकसान हो सकता है, इस पर बहस करने की जरूरत है। हमें यह जानने की जरूरत है कि चूंकि कई अमेरिकी टैरिफ भारत द्वारा निर्यात नहीं किए जाने वाले उत्पादों को लक्षित करते हैं, इसलिए पारस्परिक शुल्क भारतीय निर्यातकों को महत्वपूर्ण रूप से नुकसान नहीं पहुंचा सकते हैं। गणना के अनुसार, 2017-2024 के बीच भारत ने चीन की कीमत पर अमेरिकी निर्यात हिस्सेदारी में 38 अरब डालर का कब्जा कर लिया, यह सुझाव देते हुए कि भारत अमेरिकी टैरिफ दबाव के तहत चीन से हटते हुए किए गए व्यापार प्रवाह से और अधिक लाभ उठा सकता है, और अमेरिका के साथ व्यापार समझौते के बिना भी ऐसा होने की उम्मीद है।

बेहतर विकल्प : हम व्यापार सौदों के माध्यम से श्रम-प्रधान क्षेत्रों के निर्यात को बढ़ावा देने का प्रयास कर सकते हैं, जो कपड़ा, इलेक्ट्रानिक्स, आटो पार्ट्स और सौर उपकरण जैसे विनिर्माण उद्योगों को भारत के 'मेक इन इंडिया' अभियान के साथ तालमेल बिठाते हुए अमेरिकी बाजारों तक पहुंचने और पैमाने हासिल करने में मदद कर सकता है। लेकिन यदि यह सीमित व्यापार सौदों के माध्यम से भी हासिल किया जा सकता है, तो यह बेहतर विकल्प हो सकता है। पूर्ण व्यापार सौदे का एक नकारात्मक पहलू यह है कि अमेरिका भारत पर ऊर्जा व रक्षा वस्तुओं के आयात को बढ़ाने का दबाव डाल सकता है, जब तक इसका प्रतिकार नहीं किया जाता है, तब तक भारत की व्यापार स्थिति खराब हो सकती है।

किसानों पर प्रभाव : प्रस्तावित भारत-अमेरिका मुक्त व्यापार समझौते में दो प्रमुख विवादास्पद मुद्दे कृषि और एमएसएमई के हैं। कृषि भारत के 45 प्रतिशत से अधिक कार्यबल को रोजगार देती है, और कोई भी समझौता जो कृषि को प्रभावित करता है, वह राष्ट्र की आजीविका और खाद्य सुरक्षा को खतरे में डाल सकता है। भारतीय कृषि अमेरिकी कृषि के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती है, क्योंकि अमेरिकी कृषि के साथ प्रतिस्पर्धा करने का मतलब अमेरिकी सरकार के साथ प्रतिस्पर्धा करना है, जो अमेरिकी कृषि को भारी सब्सिडी देती है, और इसलिए अमेरिका से भारत में कृषि उपज के आयात की अनुमति देने से भारतीय कृषि पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ सकता है। इस बीच, नीति आयोग ने एक कार्य पत्र जारी किया है, जिसमें अमेरिका से जीएम सोयाबीन और मक्का जैसे कृषि उत्पादों के आयात पर शुल्क कम करने और साथ ही पोल्ट्री और डेयरी जैसे संवेदनशील क्षेत्रों की रक्षा करने का सुझाव दिया गया है। इससे किसान संगठनों में भारी रोष है, उनका कहना है कि अगर ये सुझाव मान लिए गए तो इससे बहुत नुकसान हो सकता है।

इसी तरह, समझौते में लघु उद्योग क्षेत्र के हितों की रक्षा करने की आवश्यकता है। डाटा संप्रभुता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। ऐसा लगता है कि अमेरिका हमें जितना दे सकता है, उससे कहीं अधिक मांग कर रहा है। अमेरिका के साथ समझौता हो या न हो, भारत से अमेरिका को निर्यात बिना रोक-टोक जारी रहेगा और कोई कारण नहीं है कि हम एक सीमा से अधिक रियायतें दें, जिससे भारतीय कृषि, लघु उद्योग और अर्थव्यवस्था के भविष्य के विकास को नुकसान पहुंचे।

अर्थव्यवस्था के केंद्र में कृषि और ग्रामीण क्षेत्र

संदीप भूषण
आर्थिक मामलों के जानकार

विकास के समावेशी होने की आवश्यकता ने ग्रामीण क्षेत्र में बड़े बदलाव को अर्थव्यवस्था के केंद्र में ला दिया है। लिहाजा जीडीपी और सरकारी राजस्व से आज किसी देश की आर्थिक सेहत को नहीं समझा जा रहा, बल्कि वहां समाज में हुए आधारभूत विकास को इस लिहाज से महत्व दिया जा रहा है। दुनिया में एक साफ्ट स्टेट के तौर पर उभर रहा भारत ऐसी अर्थव्यवस्था का रोल माडल बन रहा है। देश की 65 प्रतिशत आबादी आज भी यहां ग्रामीण इलाकों में ही रहती है और 47 प्रतिशत आबादी की आजीविका का मुख्य आधार कृषि है। दिलचस्प है कि ग्रामीण पर्यटन भी गांव और कस्बों की आमदनी को बढ़ाने, रोजगार के नए अवसर पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

आर्थिक सर्वेक्षण 2022-23 के मुताबिक, राष्ट्रीय आय में ग्रामीण अर्थव्यवस्था लगभग 46 प्रतिशत का योगदान करती है। सर्वेक्षण 2023-24 के मुताबिक, कृषि का योगदान इसमें 18-19 प्रतिशत तक है। यानी ग्रामीण उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति सीधे हमारी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करती है। अमेरिका स्थित बाजार अनुसंधान फर्म 'ग्रैंड व्यू रिसर्च' का अनुमान है कि वर्ष 2022 से 2030 तक अकेले कृषि और ग्रामीण पर्यटन 11.4 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (सीएजीआर) से विकसित होगा। साफ है कि ग्रामीण पर्यटन का बहुत बड़ा बाजार हमारे सामने है।

बीते एक दशक में केंद्र और राज्य सरकारों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए बड़ी संख्या में दूर-दराज के गांवों को पर्यटन हब के रूप में विकसित किया है। 'स्वदेश दर्शन' और 'प्रसाद' जैसी केंद्र की योजनाओं और प्रदेश सरकार के लगन से ग्रामीण भारत की तस्वीर काफी हद तक बदली भी है। केंद्र सरकार की वाइब्रेंट विलेज योजना से लेकर प्रदेश सरकार के अपने स्तर पर नए-नए स्थानीय पर्यटन स्थलों को विकसित करने के प्रयास ने ग्रामीण पर्यटन के साथ देश की अर्थव्यवस्था को नए आयाम दिए हैं। लेकिन अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

दरअसल, ग्रामीण पर्यटन देश के लिए कई मायनों में महत्वपूर्ण है। इससे न केवल रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से भारत की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की संकल्पना को भी बल मिलेगा। हम भली-भांति वाकिफ हैं कि किसी भी देश को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में खड़ा होने के लिए उसके रुपये की मजबूती और विदेशी मुद्रा भंडार का भरा होना बेहद जरूरी है। पर्यटन, विदेशी मुद्रा के आयात का सबसे बड़ा माध्यम है। बीते कुछ वर्षों में निजी और सरकारी प्रयासों से पर्यटन क्षेत्रों और सुविधाओं में लगातार बढ़ोतरी हुई है।

समृद्ध विरासत और विविध संस्कृति के उत्तराधिकारी होने के बावजूद भारत को अंतरराष्ट्रीय पर्यटन बाजार में अब तक बहुत सफलता नहीं मिली है। अंतरराष्ट्रीय पर्यटन बाजार में भारत की हिस्सेदारी केवल 1.2 प्रतिशत है। इसका बड़ा कारण ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व वाले पारंपरिक गांवों और कस्बों में सीमित पर्यटन विकास है। इसके अलावा, कम या निगेटिव पब्लिसिटी के कारण भी ये जगहें पर्यटकों की नजरों से दूर रह जाते हैं। हालांकि, बीते एक दशक में हमने ग्रामीण पर्यटन को बड़े बदलाव से गुजरते देखा है। संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन का कहना है कि ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए बुनियादी सुविधाओं का बेहतर होना, प्रकृति आधारित गतिविधियों के साथ ग्रामीण संस्कृति व दर्शनीय स्थलों को सुदृढ़ करना प्रमुख हैं। केंद्र और राज्य की सरकारों ने इन मुद्दों को हल करने के भरसक प्रयास किए हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के लिहाज से देखें तो ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा देने से हम दो बड़े संकटों से तेजी से उबरने में कामयाब होंगे। एक तरफ बड़ी संख्या में युवाओं को रोजगार मिलेगा, तो वहीं रोजगार के लिए पलायन करने वालों की संख्या में भी कमी आएगी।

खरी-खरी

गरीब को उठाना है

सूरन सरमा

देश के तमाम राजनेता इस बात पर एक मत हैं कि गरीबों को उठाना है। नेताजी मिले तो मैंने कहा, क्यों साहब, यह तो आप लोग अपने भाषणों में आम तौर पर कहा करते हैं कि गरीब को उठाना है, तो इसका तात्पर्य क्या है?

'गरीबों को उठाने का मतलब गरीबी मिटाने से है। इन्हें उठाए बगैर गरीबी नहीं मिट सकती।'

'तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि गरीबी को उठाकर इस देश से बाहर समंदर में डाल देना है, या उसे चार कंधे देने हैं अथवा उसका वोट हथियाना है, गरीब आदमी तो वैसे ही आपको वोट देने को विवश है।'

'इसीलिए तो उसे उठाना है, मेरा मतलब यह है कि वह हमें वोट दे तो क्या हम खुशी में पागल होकर उसे शाबासी रूप में उठा भी नहीं सकते। जब तक लोकतंत्र है, तब तक गरीब को उठाया जाता रहेगा,' वह बोला।

मैंने कहा, 'यह ठीक है कि गरीब को उठाना है, परंतु आपके पास गरीबी के अलावा भी विषय हैं, जिन पर बातचीत की जा सकती है?'

'गरीबी ही देश की एकमात्र ज्वलंत समस्या है। गरीबों के देश में अमीरों की बात करना भी तो उचित नहीं है। उसमें पूंजीवादी, असमाजवादी तथा अलोकतांत्रिक होने की तोहमत लग सकती है। इसलिए प्यारे भाई, गरीबों के देश में गरीबी से सरोकार रखना ही पड़ेगा,' उसका जवाब था।

'आपका फरमाना वाजिब है। देश में बढ़ती महंगाई ने गरीब की कमर तोड़कर रख दी है। इसीलिए वह बुरी तरह गिर पड़ा है। ऐसे में यदि वह गिरा रह गया तो गिरा माना जाएगा। भारतीय गरीब की मौलिक पहचान गरीब होते हुए भी खड़े रहना है।'

मेरी बात पर नेताजी हिनहिनाए, 'अरे अब समझे गरीबों के सरदार तुम मर्म की बात। गरीब को न तो आराम करने देना है और न सोने देना है। उसे अपनी गरीबी के खिलाफ निरंतर संघर्ष करते रहना है- अतः उसका हाथ पर हाथ धरे रहना ठीक नहीं है- इस दृष्टि से भी बैठे हुए गरीब की सही पहचान यही है कि वह निरंतर मेहनत-मशक्कत करता रहे। इससे सरकार को पता रहता है कि कौन गरीब है अथवा कौन अमीर है। यदि गरीब को उठाना है तो यह आभास कराना होगा कि वह आराम से बैठा हुआ नहीं है।'

X पोस्ट

आदित्य ठाकरे ने 'उम्मीद' नाम से एक म्यूजिक अलबम बनाया था। उसमें आठ हिंदी गाने थे, पर एक भी मराठी गाना नहीं था। तब न राज ठाकरे ने विरोध किया और न उद्धव ठाकरे ने।

ब्योमकेश बक्शी@_Byomkesh

भाषा के नाम पर छोटे दुकानदारों पर हमला गर्व की बात नहीं, बल्कि एक दुराग्रह है। महाराष्ट्र का आत्मा समावेशी और भावना बहुलतावादी है। किसी प्रकार का मनमानापन राज्य की विरासत को तय नहीं करेगा। हिंदीभाषियों को निशाना बनाना बंद हो। अभिषेक सिंघवी@DrAMSinghvi

अगर सिंधु में पानी और खून एक साथ नहीं बह सकता, तो मैदान में हाकी-क्रिकेट भी नहीं हो सकता। किसी अंतरराष्ट्रीय स्पर्धा के नियम से मुझे कोई लेनादेना नहीं, मुझे पहलगाम से उठी अर्थियां दिखती हैं।

मीनाक्षी जोशी@lMinakshiJoshi

अब जब 10 साल के बाद गाड़ी नहीं चलेगी तो क्या हर साल पाल्यूशन सर्टिफिकेट नहीं देना होगा। अगर हर साल सर्टिफिकेट दे रहे हैं तो फिर गाड़ी की फिटनेस के आधार पर चलने या नहीं चलने देने का फैसला लेना चाहिए।

कुमार अंशुमन@anshumanscribe

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या पाकिस्तानी हाकी टीम को भारत में खेलने की अनुमति देने का फैसला सही है?

सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आज का सवाल

क्या बांग्लादेश से क्रिकेट संबंध तोड़ लिए जाने चाहिए?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।

जनपथ

धंधा करने के लिए छुपा रहे पहचान,
झूठ बोलकर स्वयं का करा रहे अपमान।
करा रहे अपमान भरोसा होता खंडित,
जब ढाबे का नाम मियां जी रक्खे पंडित!
छल ग्राहक के साथ! तरीका है यह गंदा,
ऐसे कब तक आप चला पाओगे धंधा??

- ओमप्रकाश तिवारी

अरुण अशेष
राज्य ब्यूरो प्रमुख, बिहार

बिहार डायरी

जदयू का पोस्टर दे रहा विशेष संदेश

फिर से एनडीए सरकार- जदयू के प्रदेश मुख्यालय हाल में चिपकाए गए पोस्टरों पर यह नारा लिखा गया है। पोस्टर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का फोटो है। जदयू कार्यालय के बाद ऐसा ही पोस्टर भाजपा के प्रदेश कार्यालय में लगाया गया- सोच दमदार, काम असरदार, फिर एकबार एनडीए सरकार। जदयू के कार्यालय में लगे पोस्टरों पर केंद्र और राज्य सरकार की उपलब्धियों की तुकबंदी है। सामान्य रूप से देखें तो इसमें ऐसा कुछ नहीं है, जिसकी सप्रसंग व्याख्या की जाए। क्योंकि पोस्टरों पर तस्वीरें भी होती हैं। नारे भी लिखे जाते हैं। मगर चुनावी वर्ष में इस पोस्टर की न सिर्फ सप्रसंग व्याख्या हो रही है, अलग-अलग तरह के अर्थ भी निकाले जा रहे हैं।

विपक्षी दल की व्याख्या है कि यह भाजपा की साजिश है, जिसका लक्ष्य जदयू को निगलना है। जदयू कह रहा है कि यह उचित है। इसमें जदयू को निगलने का भाव नहीं है। राज्य सरकार की उपलब्धियों में केंद्र सरकार का भी योगदान होता है। राज्यों के विकास में केंद्रीय बजट के अंश खर्च होते हैं। इसलिए पोस्टर पर उपलब्धियों के साथ अगर प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री की तस्वीरें हैं तो इसे अजूबा नहीं माना चाए। फिर भी कुछ अजूबा खोज लिया गया है। वह है इससे पहले जदयू के प्रदेश कार्यालय में प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री का साझा पोस्टर नहीं चिपका था। जदयू ने कभी एनडीए सरकार को प्रचारित नहीं किया। उसके लिए नीतीश सरकार का नारा ही सर्वोच्च और पर्याप्त रहा है। आज भी जहां तहां ये पोस्टर नजर आ रहे हैं- 25 से 30, फिर से नीतीश। यह अकारण नहीं है। बीते 20 वर्षों से (2014-15 को छोड़कर) नीतीश ही बिहार के मुख्यमंत्री हैं। जीतनराम मांझी के मुख्यमंत्रित्व का वह छोटा कार्यकाल भी नीतीश के निर्देशन में ही व्यतीत हुआ था। इस बार भी भाजपा और एनडीए के दूसरे घटक दलों के नेता कह रहे हैं कि विधानसभा का चुनाव नीतीश के नेतृत्व में ही लड़ा जाएगा। बेशक केंद्र से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी इसमें सहयोग करेंगे।

प्रदेश जदयू कार्यालय की दीवारों पर चिपका दिए गए चुनावी पोस्टर। फाइल

अब कुछ देर के लिए पोस्टर को वास्तविक संदर्भ में देखिए। इसमें कोई दो राय नहीं कि नीतीश श्रेष्ठ मुख्यमंत्री साबित हुए हैं। विरोधी भी उनकी प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने बिना भेदभाव के सर्वस्पर्शी योजनाएं बनाईं। पूरी आबादी को इसका लाभ मिला। सरकार उनके नाम से चल रही है। लेकिन, यह भी सच है कि उनकी सरकार कभी अकेले जदयू के दम पर नहीं चली। लंबे समय तक भाजपा सहयोगी रही। दो बार विपक्षी राजद और कांग्रेस ने सरकार में शामिल रह कर समर्थन किया। एक बार वाम दलों ने भी सरकार का बाहर से समर्थन किया। कुल मिलाकर इन 20 वर्षों में आम मतदाताओं का अनुभव यही रहा कि हम वोट किसी को दें, सरकार का नेतृत्व तो अंततः नीतीश कुमार ही करेंगे। जनता के स्तर पर इस प्रवृत्ति का विरोध इसलिए नहीं हुआ, क्योंकि सरकार की नीतियां दल, जाति, धर्म या क्षेत्र के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं करती हैं। लेकिन, सभी दलों के कार्यकर्ताओं की तो इच्छा रहती ही है कि सरकार उनके अपने दल की हो। साझे की सरकार में सभी दल बराबरी से अपनापन को बोध नहीं कर पाते हैं।

इस बार भाजपा के कार्यकर्ता इस भाव से सक्रिय हैं कि 'अभी नहीं तो कभी नहीं' अपनी सरकार बन पाएगी। अबकी बार नीतीश सरकार- यह नारा भले ही जदयू के कार्यकर्ताओं को उत्साह से भर देता है, लेकिन अनुभव किया गया है कि यह उतनी ही मात्रा में भाजपा कार्यकर्ताओं को हतोत्साहित भी करता है। एनडीए के दूसरे घटक दलों के नेता केंद्रीय मंत्री जीतनराम मांझी और चिराग पासवान के लिए भी नीतीश कुमार मजबूरी की पसंद हैं। चिराग आज कह रहे हैं कि नीतीश ही अगले मुख्यमंत्री होंगे। 2020 का मामला इतना दूर नहीं है कि लोग याद न रख सकें।

यह आश्चर्य का विषय हो सकता है कि इन 20 वर्षों में भी भाजपा नीतीश कुमार के समकक्ष या उनके आसपास की छवि का कोई नेता बिहार में नहीं तैयार नहीं कर पाई। इस मोर्चे पर वह कांग्रेस के रास्ते पर ही चलती रही है। कांग्रेस में जिस किसी नेता का कद बढ़ा, आलाकमान की कुल्हाड़ी उस पर चल गई। भाजपा में भी अब तक यही होता रहा है। इसलिए स्वतंत्र ढंग से काम करने वाले नीतीश कुमार भाजपा के लिए अपरिहार्य बनते चले गए। आज भी बने हुए हैं। जदयू कार्यालय में लगे प्रधानमंत्री के फोटो पर जदयू के समर्थकों की ओर से भी नकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं आ रही है। उन्हें विश्वास है कि इस चुनाव के बाद भी नीतीश अपरिहार्य बने रहेंगे। क्योंकि कोई दल इतनी सीटों पर चुनाव नहीं लड़ रहा है कि अपने दम पर सरकार बना सके। यह स्थिति बिहार की राजनीति में नीतीश को अपरिहार्य बनाता है।

वाहन स्क्रैप नीति

डा. कुशाग्र राजेंद्र
एसोसिएट प्रोफेसर, एमिटी विश्वविद्यालय, हरियाणा

प्रदूषण नियंत्रण कितना प्रभावी

दिल्ली में प्रदूषण कम करने के लिए किए जा रहे प्रयासों के तहत पुराने वाहनों को सड़क से हटाने के लिए नई नीति लागू की गई है। कुछ सुधार करते हुए इसे और प्रभावी बनाया जा सकता है

पुराने वाहनों को दिल्ली की सड़कों से हटाने की नीति विवादों में घिर गई है। फाइल

दिल्ली में वायु प्रदूषण एक गंभीर समस्या है, जिस पर काबू पाने के लिए सरकार ने पुराने वाहनों को तत्काल प्रभाव से सड़क से हटाने का निर्णय लिया है। राष्ट्रीय हरित अधिकरण के वर्ष 2015 निर्णय के अनुरूप पेट्रोल वाहनों के लिए 15 साल और डीजल वाहनों को 10 साल की उम्र के बाद स्क्रैप करना अनिवार्य है। इसका उद्देश्य पुराने वाहनों को जो शायद सबसे ज्यादा वायु प्रदूषण फैलाते हैं, सड़कों से हटाना और हवा की गुणवत्ता में सुधार करना है। लेकिन क्या 'पुराने वाहन' वाकई में ही सबसे ज्यादा प्रदूषण फैलाते हैं? क्या यह नीति वास्तव में पर्यावरण के लिए प्रभावी रूप में फायदेमंद है? क्या यह नीति पृथ्वी के सीमित संसाधनों और सतत विकास के दीर्घकालीन लक्ष्य को ध्यान में रखती है? यातायात से प्रदूषण कम करने के लिए क्या गाड़ियों की 'उम्र' सबसे कारगर तरीका है? या वाहन द्वारा तय की गई दूरी जैसे प्रभावी मानदंड की अनदेखी हो गई है?

प्रदूषण फैला रहे वाहनों पर नियंत्रण के लिए वाहन की आयु, उससे निकलने वाले प्रदूषण का स्तर और वाहन द्वारा तय की गई कुल दूरी जैसे मानदंडों पर बहस एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, खासकर दिल्ली जैसे शहरों में जहां वायु प्रदूषण गंभीर समस्या है। प्रदूषण-आधारित मानदंड वाहन के वास्तविक उत्सर्जन पर केंद्रित है, जिससे आयु की परवाह किए बिना सबसे अधिक प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों को लक्षित किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण वायु प्रदूषण को कम करने में अधिक प्रभावी हो सकता है, जिसे सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय ने भी अपने मसौदा वाहन स्क्रैपेज नीति (2021) में रखा था।

वाहनों को नष्ट करना : पिछले एक दशक से राष्ट्रीय राजधानी में विकराल होते वायु प्रदूषण और कुछ नहीं कर पाने की स्थिति में सरकार इस नीति में ही चमत्कार देख रही है। स्वाभाविक है कि पुराने वाहन हटेंगे तो उसके बदले लोग नए वाहन खरीद सकते हैं। जानकारों का यह मानना है कि सरकार भी यही चाह रही है। अन्यथा इस नीति को प्रभावी रूप से लागू करने से पहले सार्वजनिक परिवहन को चाकचौबंद करती नजर आती। नए वाहन बनाना एक लंबी, जटिल और अत्यधिक प्रदूषण और पर्यावरण फुटप्रिंट वाली प्रक्रिया है, जिसमें स्टील, एल्युमीनियम, प्लास्टिक और दुर्लभ धातुओं जैसे संसाधनों, पानी, ऊर्जा, जहरीले रसायन की भारी खपत और बड़े पैमाने पर कार्बन उत्सर्जन भी होता है। शेष संसाधनों की खपत छोड़ भी दें तो साधारणतया एक औसत कार के निर्माण में करीब 10 टन कार्बन डाईआक्साइड उत्सर्जित होता है। यदि एक पुराना वाहन प्रदूषण मानदंड को पूरा कर रहा है तो उसे स्क्रैप करके उसकी जगह नया वाहन लिया जाए, तो कुल मिलाकर पर्यावरण को नुकसान ही होगा। इससे एक अदद कार का "लाइफ साइकिल उत्सर्जन" नजरअंदाज ही होगा और दिल्ली की नीति इस पहलू को भी नजरअंदाज ही कर रही है।

संसाधनों की बर्बादी : पृथ्वी पर मानव गतिविधियों का दायरा इतना बढ़ चला है कि अब यहां के संसाधन हमारी आवश्यकता की तुलना में कम पड़ रहे हैं। वर्तमान में हम 1.8 पृथ्वी के संसाधन जितना दोहन कर रहे हैं। बड़े पैमाने पर खनन, प्लास्टिक की खपत और विकराल होती ऊर्जा की मांग पर्यावरण तंत्र को बेहाल कर रही है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार, आटोमोबाइल उद्योग संसाधन निष्कर्षण और दोहन का एक प्रमुख कारण है। ऐसे में प्रदूषण मानदंड को पूरा करते पुराने वाहनों को भी स्क्रैप करना हर लिहाज से घाटे का प्रयोजन है। जलवायु परिवर्तन के इस दौर में हमें ऐसी नीतियों की जरूरत है जो न केवल तात्कालिक प्रदूषण को कम करे, बल्कि दीर्घकालिक रूप से सतत विकास के प्रारूप के अनुरूप हो। सर्कुलर इकोनमी के इस दौर में जब उत्पादों का जीवनकाल बढ़ाने के लिए मरम्मत को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, उस समय यह नीति संसाधनों की बर्बादी को बढ़ावा देती और पृथ्वी पर अनावश्यक बोझ डालती प्रतीत होती है।

यह नीति पर्याप्त संशोधन के साथ लागू होनी चाहिए, जिसमें वाकई प्रदूषित करने वाले वाहन स्क्रैप हों। साथ ही, पुराने वाहनों को कम प्रदूषण वाले इंजन या तकनीक से अपग्रेड करने की व्यवस्था भी कारगर हो सकती है। इस लिहाज से तय की गई दूरी और प्रदूषण आधारित मानदंड मौजूदा नीति का बेहतर विकल्प हो सकता है। हालांकि, इसके लिए मजबूत उत्सर्जन परीक्षण व्यवस्था की जरूरत है। भारत में प्रदूषण नियंत्रण प्रमाणपत्र प्रणाली खानापूर्ति बन कर रह गई है जो इतनी सक्षम नहीं है कि सड़क पर उत्सर्जन को सटीकता से माप सके। लेकिन यदि सरकार परीक्षण सुविधाओं में निवेश करे तो प्रदूषण-आधारित मानदंड अधिक न्यायसंगत और प्रभावी साबित हो सकता है।

****

दलाईलामा का वारिस

विवाद का विषय

दलाईलामा का वारिस या अगले दलाईलामा की तलाश तिब्बती आध्यात्मिक नेता तथा चीन सरकार के बीच विवाद का विषय बन गया है। इससे स्वायत्तता और धार्मिक स्वतंत्रता के तिब्बती संघर्ष में एक नया अध्याय जुड़ने वाला है क्योंकि चीन सरकार और चौदहवें दलाईलामा के बीच तिब्बत के आध्यात्मिक व भौतिक नेता अगले दलाईलामा की तलाश पर टकराव पैदा हो गया है। चौदहवें दलाईलामा तेनजिन ग्यात्सो ने स्पष्ट कर दिया है कि दलाईलामा का संस्थान उनके बाद भी जारी रहेगा और उनके वारिस का चुनाव ज्यूरिक की एक फाउंडेशन द्वारा किया जाएगा जिसकी स्थापना उन्होंने ही तिब्बती परंपराओं के अनुरूप की थी। इस प्रकार तिब्बती नेतृत्व क्विंग काल के पवित्र अवशेष 'गोल्डेन अर्न की पवित्र प्रक्रिया' पर अपनी पूरी स्वायत्तता बनाए रखना चाहता है, जबकि बीजिंग जोर दे रहा है कि इसका प्रयोग अगले दलाईलामा के चयन में किया जाएगा। वर्तमान दलाईलामा तेनजिन ग्यात्सो को 1940 में चार साल की आयु में चौदहवां दलाईलामा घोषित किया गया था। इसके लिए परंपरागत तिब्बती धार्मिक व्यवहारों का पालन किया गया था जिनमें किसी 'अर्न' या लाटरी ड्रा के बजाय दृष्टिकोण, संकेत तथा पवित्र विमर्श शामिल हैं। चीन ने 1951 में तिब्बत पर कब्जा कर लिया था। इसके बाद 1959 में चीनी शासन के खिलाफ एक विफल विद्रोह के बाद दलाईलामा तिब्बत छोड़ कर भाग आए और भारत में बस गए। उन्होंने धर्मशाला में एक निर्वासित सरकार की स्थापना की थी। इसके बाद से ही वे तिब्बती संघर्ष का चेहरा बने हुए हैं तथा अहिंसा, धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक संरक्षण की मांग कर रहे हैं। 6 जुलाई को वे 90 साल के हो जाएंगे। इसलिए उनके वारिस का सवाल न केवल तिब्बतियों, बल्कि पूरे बौद्ध समुदाय के लिए तत्काल महत्वपूर्ण हो गया है। दलाईलामा लंबे समय से कह रहे हैं कि उनके 'पुन: अवतार लेने की प्रक्रिया' धार्मिक परंपरा का मामला है। 2011 में ही उन्होंने घोषणा कर दी थी कि उनके वारिस का चयन पूरी तरह उनके आध्यात्मिक कार्यालय ज्यूरिक में स्थित 'गाडेन फोड्रांग ट्रस्ट' द्वारा किया जाएगा और उन्होंने बीजिंग की किसी भूमिका या उसकी 'गोल्डेन अर्न' प्रक्रिया को खारिज कर दिया था। लेकिन इसके बावजूद चीन का दृष्टिकोण कठोर बना हुआ है। अपनी हालिया टिप्पणी में चीनी विदेश मंत्रालय की प्रवक्ता माओ निंग ने जोर दिया कि किसी भी 'अवतार' को 'अर्न' प्रक्रिया से चीन सरकार द्वारा स्वीकार किया जाएगा। बीजिंग इसे न केवल परंपरा, बल्कि तिब्बती धर्म और पहचान पर नियंत्रण का माध्यम मानता है जो उसकी व्यापक अधिग्रहण नीति का प्रमुख अंग है। ऐसा पहली बार नहीं है कि 'पुन: अवतार' का मुद्दा अंतरराष्ट्रीय विवाद का विषय बना हो। 1995 में वर्तमान दलाईलामा ने छ: साल के गेधुन चोकेयी नाइमा को ग्यारहवां पंचेन लामा घोषित किया था जो तिब्बती बौद्ध धर्म का दूसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद है। लेकिन इसके कुछ ही दिनों बाद वह बच्चा गायब हो गया और तब से उसका पता नहीं चला है। उसके स्थान पर चीन ने अपनी पसंद के एक बच्चे को नियुक्त कर दिया, पर तिब्बती समुदाय ने इस निर्णय को खारिज कर दिया।

वर्तमान दलाईलामा ने ज्यूरिक की एक फाउंडेशन द्वारा अपना वारिस चुनने की इच्छा प्रकट की है। चीन सरकार को इस निर्णय का सम्मान करना चाहिए क्योंकि वह स्वयं को 'लोक गणराज्य' कहता है, इसलिए जनता की भावनाओं का सम्मान किया जाना चाहिए। इसके साथ ही दलाईलामा चीन के लिए किसी प्रकार का खतरा नहीं हैं, हालांकि वे सरकार के लिए थोड़ी परेशानी जरूर पैदा करते हैं। वर्तमान समय में लगभग निश्चित है कि चीन 'अर्न' प्रक्रिया के माध्यम से अपना दलाईलामा नियुक्त करेगी और उसके लिए ऐतिहासिक वैधता की भावना पैदा करने का प्रयास करेगी। इस प्रकार ऐसी स्थिति पैदा होने जा रही है जिसका तिब्बती निश्चित रूप से विरोध और प्रतिरोध करेंगे। अगले दलाईलामा की खोज राज्य और धार्मिक विश्वास के बीच टकराव का कारण बन गई है। यह टकराव शताब्दियों पुरानी आध्यात्मिक विरासत तथा इक्कीसवीं शताब्दी के तानाशाही शासन के बीच है। पंद्रहवें दलाईलामा पर इतिहास तथा तिब्बतियों के लिए संघर्ष का दायित्व होगा।

बांग्लादेश में जमाते इस्लामी का उभार

शेख हसीना के 15 वर्षीय शासन के तख्तापलट के बाद जमाते इस्लामी बांग्लादेश राजनीतिक पुनर्जीवन हेतु प्रयासरत है। वह स्वयं को प्रगतिशील एवं सहिष्णु इस्लामी पार्टी बता रही है, लेकिन अतीत से उसकी मुक्ति संभव नहीं है।

अंकिता सान्याल
(लेखिका, शोधकर्ता हैं)

जुलाई, 2024 में एक विद्रोह द्वारा शेख हसीना के 15 वर्षीय शासन का तख्ता पलटने के बाद जमाते इस्लामी बांग्लादेश राजनीतिक पुनर्जागरण के रास्ते पर है और स्वयं को एक प्रगतिशील एवं सहिष्णु इस्लामी पार्टी के रूप में पेश कर रही है। लेकिन अब तक उसकी राजनीतिक वापसी सहज नहीं रही है। लेकिन अतीत के भूत जमात पर हावी हैं, खासकर 1971 के मुक्ति संग्राम में उसकी भूमिका विवादास्पद रही है। हाल ही में जमाते इस्लामी बांग्लादेश के अमीर शफीकुर रहमान ने 1947 के बाद से की गई अतीत की सारी गलतियों के लिए सार्वजनिक माफी मांगी जिसमें मुक्ति संग्राम भी शामिल है। हालांकि, जमात प्रमुख ने पहली बार माफी नहीं मांगी है, पर इसमें निश्चित रूप से मुक्ति संग्राम का सीधा संदर्भ पहली बार आया है। ऐसे में 1971 के युद्ध में जमाते इस्लामी की भूमिका पर सरसरी नजर डालना जरूरी है। दशकों तक पश्चिमी पाकिस्तान के औपनिवेशिक नजरिये ने पूर्वी पाकिस्तान में पूरब के नस्ली बंगालियों में मुक्ति की भावना ने जन्म लिया। इस व्यापक लहर के विरोध में 1941 में स्थापित जमाते इस्लामी ने पूर्वी पाकिस्तान द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता की मांग का विरोध करते हुए पश्चिमी पाकिस्तान का पक्ष लिया। इसका कारण जमाते इस्लामी का व्यापक इस्लामवादी वैचारिक दृष्टिकोण 'मुस्लिम उम्मा' की एकता पर आधारित था, जबकि पूर्वी पाकिस्तान की अलगाववादी महत्वाकांक्षा की जड़ें सेक्युलर बंगाली राष्ट्रवाद में थी जिसे इस दृष्टिकोण के लिए खतरा माना जाता था।

लेकिन जमात के नेता और सदस्य केवल पश्चिम पाकिस्तान से जुड़ाव ही नहीं प्रदर्शित करते थे, बल्कि 'आपरेशन सर्चलाइट' शुरू होने के बाद वे पाकिस्तानी सेना के सक्रिय सहयोगी बन गए और उन्होंने पूर्वी पाकिस्तान में बंगालियों के खिलाफ उनकी सैनिक कार्रवाई में सहायता भी की। जमात के तत्कालीन प्रमुख गुलाम आजम बंगाली थे और वे पूर्वी पाकिस्तान केन्द्रीय शांति समिति को संगठित करने वालों में शामिल थे। यह पाकिस्तानी सेना की महत्वपूर्ण एजेंट बन गई थी और उसने स्वतंत्रता सेनानियों तथा उनके समर्थकों की एक सूची भी बनाई थी। जमात ने अर्धसैनिक मुक्ति-विरोधी बलों का गठन किया था जिनमें रजाकार, अल-बद्र और अल-शम्स शामिल हैं जिन्होंने देश की जनता-बंगालियों के खिलाफ अथक रूप से असाधारण हिंसा फैलाई। उन्होंने एकसाथ मिल कर लगभग तीन मिलियन नस्ली बंगालियों का नरसंहार किया जिनमें स्वतंत्रता सेनानी, बंगाली बुद्धिजीवी, पेशेवर तथा स्वतंत्रता सेनानियों के समर्थक शामिल थे।

इसके साथ ही व्यवस्थित ढंग से 200-400,000 बंगाली महिलाओं और लड़कियों से बलात्कार किया गया तथा हिंदुओं की बड़े पैमाने पर हत्यायें की गईं। 1971 के बाद बांग्लादेश में जमात की राजनीतिक यात्रा उथलपुथल वाली रही। 1971-75 तक इस पर शुरुआती प्रतिबंध लगाया गया लेकिन बाद में वह 1990 के दशक में तीसरी सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी बन कर उभरी। इसके बाद अंतरराष्ट्रीय अपराध ट्राइब्यूनल एक्ट के अंतर्गत 1971 में युद्ध अपराधों के आरोप में उसके अनेक नेताओं को सजा दी गई। 1971 में युद्ध अपराधों के आरोप में उसके प्रमुख नेताओं गुलाम आजक और एटीएम अजहरुल इस्लाम को गिरफ्तार कर उनको फांसी की सजा दी गई। जमाते इस्लामी ने इसे 'राजनीति प्रेरित' षडयंत्र कहा था। पाकिस्तान की तरह जमात ने 1971 में अपनी भूमिका के लिए कभी सार्वजनिक माफी नहीं मांगी। इसके बजाय उसने 1971 के युद्ध में अपनी संस्थागत संलिप्तता के आरोपों से इनकार कर दिया तथा युद्ध अपराधों और मानवाधिकार उल्लंघनों के आरोप भी खारिज कर दिए, जबकि इनके दस्तावेजी प्रमाण उपलब्ध थे। उच्च न्यायालय द्वारा निर्वाचन आयोग में उसका पंजीकरण अवैध घोषित होने के बाद उसका राजनीतिक कैरियर ठहर गया। आरोप था कि उसके पार्टी घोषणापत्र में संवैधानिक सिद्धान्तों के प्रति प्रतिबद्धता नहीं प्रकट की गई थी। इसके बाद सबसे बड़ी इस्लामी पार्टी के चुनावों में भाग लेने पर रोक लगी रही। इसी साल ढाका में सिविल सोसाइटी के शांतिपूर्ण शाहबाग प्रदर्शन में जमात नेता अब्दुल कादिर मुल्ला के लिए फांसी के साथ ही जमात पर पूर्ण प्रतिबंध की मांग की गई क्योंकि उसे आईसीटी द्वारा 1971 में युद्ध अपराधों के लिए आजीवन कारावास की सजा दी गई थी। 2020 में जमात के अनेक पूर्व एक्टिविस्टों ने पार्टी से संबंध तोड़ लिए और एक नई पार्टी 'आमार बांग्लादेश' का गठन किया, लेकिन जमात ने लगातार मुक्ति संग्राम में अपनी भूमिका के लिए माफी मांगने से इनकार कर दिया।

शेख हसीना के तख्तापलट तथा डा. यूनुस के नेतृत्व में अंतरिम सरकार द्वारा जमाते इस्लामी पर लगा प्रतिबंध उठा लेने के बाद जमात का राजनीतिक उभार शुरू हुआ। अवामी लीग सरकार ने यह प्रतिबंध जुलाई, 2024 में हिंसा भड़काने के आरोप में लगाया था। अब पार्टी स्वयं को एक सहिष्णु, मध्यमार्गी व प्रगतिशील पार्टी के रूप में पेश कर रही है जिसका विश्वास बांग्लादेश की स्वतंत्रता और उसकी संप्रभुता में है तथ वह बांग्लादेश को एक इस्लामी कल्याणकारी राज्य बनाना चाहती है। इस सुनियोजित कदम के माध्यम से वह पहले के कट्टरपंथी वैचारिक दृष्टिकोण से स्वयं को अलग कर 2024 में विद्रोह की भावना से जोड़ना चाहती है। शेख हसीना के तख्तापलट के बाद से बांग्लादेश में अवामी लीग को राजनीतिक रूप से पूरी तरह अलग थलग किया गया और अब उस पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। इसके साथ ही शेख मुजीबुर रहमान की विरासत समाप्त करने के प्रयास भी हो रहे हैं। इस प्रकार राजनीतिक विमर्श भी मुक्ति संग्राम से दूर हट गया है और बहुत से लोग इसे पुन: परिभाषित करने की मांग भी कर रहे हैं। बांग्लादेश में बहुत से लोग छात्र-नीत जुलाई 2024 के विद्रोह को 'दूसरा मुक्ति संग्राम' कह रहे हैं जो 1971 की महत्वाकांक्षाओं को पूरी करने का प्रयास कर रहा है जो अधूरी रह गई थीं। जमात भी इस समूह में शामिल हो गई है और दावा कर रही है कि देश का "सच्ची स्वतंत्रता' 1971 के बजाय 2024 में मिली। पार्टी यह मांग करने वालों की अग्रिम पंक्ति में थी कि जुलाई विद्रोह को अवामी लीग द्वारा किया गया 'नरसंहार' माना जाए। हालांकि, आईसीटी के मुख्य अभियोजक ने हाल में स्पष्ट करते हुए इसे व्यापक हत्या कहा है। 1971 में उसकी भूमिका की याद दिलाने पर जमात आमतौर से इससे इनकार करती है। नवंबर में जमात प्रमुख ने कहा कि वह इस शर्त पर माफी मांगने के लिए तैयार हैं 'यदि 1971 की गलतियों को निसंदेह रूप से सिद्ध कर दिया जाए।' इसके साथ ही उन्होंने आपराधिक कृत्य के बजाय 'राजनीतिक दृष्टिकोण' बता कर 1971 में पार्टी का दृष्टिकोण सही ठहराया है। उन्होंने जमात नेताओं के खिलाफ युद्ध अपराधों में सुनवाई की वैधता पर भी सवाल उठाए हैं।

फरवरी में जमात प्रमुख ने पूर्व पार्टी प्रमुख गुलाम आजम को 'उत्पीड़न का शिकार' बताया था जो 'फासिस्ट' अवामी लीग के हाथों उत्पीड़न और मौत का शिकार हुए। पार्टी ने अपने अन्य नेताओं की रिहाई के लिए व्यापक आंदोलन चलाया। इसके बाद मई में सुप्रीम कोर्ट के आदेश से पार्टी के उप-महासचिव एटीएम अजहरुल इस्लाम की रिहाई हुई। इसके बाद जमात ने आईसीटी युद्ध अपराध सुनवाई को पार्टी नेताओं के 'जानबूझ कर सफाये' की रणनीति बताया है। सबसे बड़ी इस्लामी पार्टी दूसरी इस्लामी पार्टियों से गठजोड़ का प्रयास कर रही है क्योंकि उसकी पुरानी सहयोगी बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी-बीएनपी से उसका संबंध टूट गया है। लेकिन अन्य इस्लामी पार्टियां 1971 के युद्ध में उसकी ऐतिहासिक भूमिका का बोझ नहीं ढोना चाहती हैं। निसंदेह अब मुक्ति संग्राम का सीधा संदर्भ दे कर जमात के प्रमुख की हालिया माफी चुनाव के मैदान में पार्टी का संकट उजागर करती है। निर्वाचन आयोग द्वारा जमात का पंजीकरण बहाल करने के बाद अब वह संभवत: इस्लामी गठबंधन बनाने व जनता का विश्वास जीतने के लिए दूसरी इस्लामी पार्टियों को अपने साथ लाना चाहती है। लेकिन किसी भी माफी से बांग्लादेश की सबसे पुरानी इस्लामी पार्टी की राजनीतिक वापसी सुनिश्चित नहीं लगती है। इससे 1971 के मुक्ति संग्राम में उसकी विवादास्पद भूमिका का मुद्दा और जोर पकड़ सकता है।

त्रिभुवन सहकारिता विवि: ज्ञान से बनेगा सहकार

"अब बदलाव का समय है। अब किसान को सिर्फ 'उत्पादक' नहीं बल्कि 'निर्णायक' बनाना होगा। अब वक्त है कि मंडी की बोली नहीं, किसान की कीमत चले।"

बिनोद आनंद
(लेखक, सहकारी मामलों के विशेषज्ञ हैं)

जब भारत में सहकारिता के नवजागरण की गाथा सुनाई जाएगी, तब त्रिभुवन सहकारिता विश्वविद्यालय का नाम सिर्फ एक और शैक्षणिक संस्थान के रूप में नहीं लिया जाएगा,बल्कि यह एक ऐतिहासिक मोड़ के रूप में याद किया जाएगा- आत्मनिर्भर भारत का वह तोहफा जो पूरी दुनिया को हमारी सहकारिता की ताकत दिखाएगा। यह विश्वविद्यालय सिर्फ ईंट-पत्थर की इमारत नहीं होगा, यह होगा सहकारिता का आधुनिक गुरुकुल-जहां गांव-गांव से आए नौजवान तैयार होंगे 'विकसित भारत 2047' के नायक बनने के लिए। यह होगा वह यज्ञशाला जहां किसान का बेटा-बेटी सिर्फपढ़ेंगे नहीं, बल्कि नेतृत्व करना सीखेंगे-बाजार के नियम बनाएंगे, दूसरों की बनाई शर्तों पर नहीं चलेंगे।

जब धरती का बेटा-किसान बीज बोता है, तो वह सिर्फ'फसल नहीं उगाता, वह उम्मीद बोता है। उसकी आंखों में सपना होता है- अपने बच्चों के भविष्य का, गांव की समृद्धि का, औए एक ऐसे भारत का, जहां उसकी मेहनत का हक उसे पूरा मिले। अब बदलाव का समय है। अब किसान को सिर्फ 'उत्पादक' नहीं बल्कि 'निर्णायक' बनाना होगा। अब वक्त है कि मंडी की बोली नहीं, किसान की कीमत चले। इसी सोच की प्रेरणा से जन्म ले रहा है- त्रिभुवन सहकारिता विश्वविद्यालय।

यह कोई साधारण विश्वविद्यालय नहीं, यह उस गांव की चौपाल की तरह है जहां से नया भारत आकार लेगा। यह उस गुरुकुल की तरह है जहां किसान का बेटा-बेटी सिर्फडिग्री नहीं लेंगे, बल्कि बाजार के नियम बदलने की ताकत लेकर निकलेंगे। यह विश्वविद्यालय उस किसान की आवाज बनेगा, जिसकी बात अक्सर नीतियों में खो जाती है। यह एक ऐसा सपना है-जो अब सपना नहीं रहेगा। जैसे गंगोत्री से निकलकर गंगा सारे देश को जोड़ती है, वैसे ही यह विश्वविद्यालय हिमाचल की पहाड़ियों से लेकर ओडिशा के डेल्टा तक,राजस्थान के रेगिस्तान से लेकर छत्तीसगढ़ के जंगलों तक-हर कोने को जोड़ने वाला केंद्र होगा।

ज्ञान, नीति,तकनीक और प्रेरणा का एक ऐसा संगम जहां भारत और विश्व के श्रेष्ठ सहकारिता विशेषज्ञ, किसान वैज्ञानिक, नीति निर्माता और नवाचारकर्ता जुड़ेंगे। यहां बनेंगी भविष्य की वो रणनीतियां जो किसानों को सिर्फ उत्पादक नहीं बल्कि मालिक बनाएंगी। एआई से लैस कृषि मंडियां, ब्लॉकचेन आधारित भंडारण, बायोएथेनॉल और सीबीजी आधारित ऊर्जा- ये सब कोई कल्पना नहीं, बल्कि यहीं से साकार होंगी। यह विश्वविद्यालय मिशन कर्मयोगी के अनुरूप नई पीढ़ी के सहकारी प्रशासनों को तैयार करेगा- जो सिर्फ नियमों के पालनकर्ता नहीं बल्कि सुधार के अगुवा होंगे। जलवायु- टिकाऊ खेती, सर्कुलर इकोनॉमी, और सौर ऊर्जा आधारित गांव- से सब इसके मॉडल होंगे। जब दुनिया एरक्षु और रऊक्षु के चौराहे पर खड़ी है, भारत जवाब देगा- सहकारिता के रास्ते, जहां सम्मान विकेन्द्रीकरण और साझेदारी होगी। त्रिभुवनदास पटेल के नाम से स्थापित यह संस्थान जैसे अमूल ने दूध के क्षेत्र में क्रांति की वैसे ही कृषि कपड़ा वानिकी और लॉजिस्टिक्स में करेगा।

यहां के स्नातक गांव से ग्लोबल मार्केट से हर कड़ी जोड़ेंगे। डिजिटल वेयर हाउस चलाएंगे, एफपीओ को लीड करेंगे, जैविक उत्पादकों को अंतरष्ट्रीय बाजार तक पहुंचाएंगे। ये युवा होंगे देश के 2.5 लाख वेयरहाउस की कमान संभालने वाले। ब्लॉक चेन आधारित भंडारण साइबर सुरक्षा, और रियल टाइम सिस्टम चलाएंगे। त्रिभुवन गुरुकुल से निकले स्नातक वित्तीय अपराधों पर नजर रखेंगे। लीकेज रोकेंगे,और हर किसान तक उसका हक पहुंचाएंगे।

किसान जब समर्थन मूल्य के इंतजार में नहीं रहेगा। वह खुद तय करेगा कि उसकी उपज की कीमत क्या हो। हर पीएसी अब मिनी मंडी बनेंगी, क्यूआर कोड आधारित रसीद से किसान को दाम, डेटा और दिशा- सब मिलेगा। यही होगा मंडी का मालिकाना हक। जिसमें मध्यस्थ नहीं, किसान रहेगा केंद्र में। यह विश्वविद्यालय बनाएगा एक नया सहकारी वित्त तंत्र-यहां गांव में एनबीएफसी चलेंगी, एसएचजी से स्टॉक एक्सचेंज तक किसान का सफर होगा। बीमा, निवेश, और वित्तीय साक्षरता-सब कुछ अब किसानों के लिए होगा। शहरों तक सीमित नहीं रहेगा। अमेरिका और यूरोप के सहकारी मॉडल को अब भारत पछाड़ेगा। इजराइल के टॉजिट मॉडल, जर्मनी के क्लस्टर विकास, और भारतीय लोकजीवन-इन सब के मेल से निकलेगा नया वैश्विक सहकारिता नेतत्व। यह विश्वविद्यालय होगा उत्तर आर्थिक असमानता को।

ना टैक्स के जरिए, ना दान के जरिए-बल्कि अधिकार और स्वामित्व के जरिए। त्रिभुवन विश्वविद्यालय रचेगा तीन स्तरीय सहकारिता अर्थव्यवस्था- पहला स्तर पीएसीएस-एसएचजी, एफपीओ-उत्पादन और संग्रह। दूसरा स्तर प्रसंस्करण-खादी, दुग्ध, हस्तशिल्प-मूल्यवर्धन। तीसरा स्तर सहकारी बैंक, निर्यात मॉडल, डिजिटल मंडिया- बाजार तक पहुंच। यह कोई किताबों की बात नहीं। यह होगा जमीन पर उतरा आत्मनिर्भर भारत का सहकारी मॉडल।

जब न्यूयॉर्क और जिनेवा में अंतरराष्ट्रीय सहकारिता वर्ष मनाया जाएगा, तब दुनिया कहेगी-भारत ने सिर्फ जश्न नहीं मनाया, नेतृत्व किया। कल का युवा नौकरी के लिए कतार में खड़ा नहीं होगा। वो स्वयं आजीविका निर्माता बनेगा। क्रेडिट कार्ड के जाल से मुक्त, फिनटेक के शोषण से आजाद।

वह ऋग्वेद की भावना से प्रेरित होगा। हम साथ सोचें, साथ चलें। जहां डर ना हो, और मस्तक ऊंचा हो, जहां ज्ञान स्वतंत्र हो, और हर गांव समृद्धि का केंद्र बने। जय हिंद! जय किसान! जय सहकार!

आप की बात

आनलाइन गेम

देश में आनलाइन गेम और इसके माध्यम से जुए का धंधा काफी जोर-शोर से चल रहा है। टीवी चेनलों पर इससे संबंधित विज्ञापन देखने को मिल जाते हैं। वैसे तो आनलाइन गेमों का प्रचार-प्रसार सारी दुनिया में हो रहा है और भारत के भी तकनीक में दक्ष लोग तरह-तरह के गेम ईजाद कर दुनिया की इस प्रतियोगिता में शामिल हो रहे हैं। लेकिन आनलाइन गेमों को जुए या सट्टेबाजी से अलग रखने के जैसे प्रयास होने चाहिए, उनका अभाव दिख रहा है। किशोरों, किशोरियों व खासकर छोटे बच्चों में आनलाइन गेमिंग की आदत अनेक प्रकार से हानिकारक सिद्ध हो रही है। इस लत के कारण उनकी पढ़ाई पर प्रभाव पड़ रहा है तथा खेल गतिविधियों में भाग न लेने से उसका शारीरिक स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। कई देशों ने छोटे बच्चों के मोबाइल प्रयोग पर यही सोच कर काफी नियंत्रण लगाए हैं। भारत को भी आनलाइन गेम तैयार करने में दुनिया भर से प्रतियोगिता के साथ ही बच्चों, किशोरों और किशोरियों के समग्र स्वास्थ्य व संतुलित विकास के लिए गेमिंग पर नियंत्रण लगाना चाहिए। खासकर गेमिंग के माध्यम से जुए व सट्टेबाजी पर लगाम लगाने के लिए गेमों की संरचना में बदलाव पर विचार होना चाहिए ताकि इनका दुरुपयोग संभव न हो सके।

- मनमोहन राजावत, शाजापुर

खेलो भारत नीति

शिक्षा के साथ संस्कार और खेल गतिविधि का जीवन में महत्वपूर्ण योगदान होता है। बुद्धिकौशल, ज्ञान और शारीरिक स्वस्थ होने के लाभ है। भारत सरकार ने खेलो भारत नीति, 2025 को मंजूरी दे दी है जिसका उद्देश्य देश को वैश्विक खेल महाशक्ति बनाना और ओलम्पिक गेम्स .2036 जैसे आयोजनों की मेजबानी के लिए मजबूत दावेदार के रूप में स्थापित करना है। निश्चित रूप से यह बेहद सराहनीय और कारगर पहल है। नई नीति 2001 की खेल नीति की जगह लेगी और दो दशकों में भारत के खेलों में शीर्ष 5 देशों में लाने की रणनीति तय करती है। राष्ट्रीय खेल नीति, 2025 एक आदर्श मॉडल के रूप में राज्यों को अपनी-अपनी खेल नीति बनाने के लिए प्रेरित करेगी। राज्यों के कुशल नेतृत्व का रुख ग्रामीण अंचलो के मौलिक खेलों और खेल प्रतिभाओं पर भी होना चाहिए। जीवन के अनेक अन्य क्षेत्रों की तरह अब खेल भी कॅरियर, कमाई और लोकप्रियता का केन्द्र बनते जा रहे हैं। इसके साथ ही निजी क्षेत्र द्वारा खेलों के प्रोत्साहन से इनकी लोकप्रियता बढ़ी है। लेकिन इससे नकारात्मक रूप से खिलाड़ियों का प्रशिक्षण तथा विभिन्न खेलों की किटें महंगी होती जा रही हैं। इस पर भी ध्यान देना चाहिए।

- योगेश जोशी, बड़वाह

चुनाव आयोग का निर्णय

चुनाव आयोग का बिहार में मतदाता सूचियों के गहन परीक्षण का निर्णय लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पारदर्शिता सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। हैरानी है कि विपक्षी दल, खासकर कांग्रेस और उसके सहयोगी इसका तीव्र विरोध कर रहे हैं। हालांकि, उनके आरोप चुनाव आयोग के बजाय भाजपा पर केंद्रित हैं, मानो यह निष्पक्ष आयोग न होकर सत्ताधारी दल का कोई औजार हो। विपक्ष का यह रवैया विरोध के लिए विरोध की राजनीति का प्रतीक बनता जा रहा है। हरियाणा और महाराष्ट्र चुनावों में धांधली के आरोपों के पीछे ठोस प्रमाण न होने के बावजूद विपक्ष ने शोर मचाया और अंतत: अपनी ही साख को नुकसान पहुंचाया। अब वही रवैया बिहार में भी दोहराया जा रहा है। चुनाव आयोग ने स्पष्ट किया है कि इस प्रक्रिया से उन नागरिकों को राहत दी जाएगी जो पहले ही परीक्षण का हिस्सा रह चुके हैं। कुछ राजनीतिक दलों को आशंका है कि यदि फर्जी और अवैध मतदाताओं को सूची से हटाया गया तो उनका वोटबैंक प्रभावित होगा। देश में अवैध घुसपैठियों के फर्जी दस्तावेज बनवाकर उन्हें वोट देने का अधिकार दिलाना एक पुराना राजनीतिक हथकंडा रहा है। मतदाता सूची की सफाई लोकतंत्र की बुनियादी आवश्यकता है।

- विभूति बुपक्या, खाचरौद

सड़क सुरक्षा

पुलिस प्रशासन चाहे कितना ही जुर्माना लगाए और सख्ती बरते लेकिन लोग सड़क सुरक्षा नियम कायदे और दिशा निर्देश का पालन नहीं करते हैं और अक्सर इसकी कीमत भी चुकानी पड़ती है। हापुड़ में एक टैंकर से टक्कर के बाद मोटरसाइकिल सवार व चार बच्चों की मौत बेहद दुखद घटना है। देश में ऐसी सैकड़ों दुर्घटनायें होती हैं। हमें यह जरूर समझना होगा कि मोटरसाइकिल केवल दो व्यक्तियों के लिए हैं। हापुड़ की घटना हम सभी के लिए एक सबक है कि हम अकारण परिवार को मृत्यु का ग्रास न बनने दें। ऐसी घटनाओं को रोका जा सकता है। विशेष कर स्कूटर व मोटरसाइकिल सवार सावधानी बरतें और गाइडलाइन का पालन करें। अक्सर हमारे युवा सड़क पर मोटरसाइकिल से कलाबाजी और स्टंट करते हैं जिसके कारण निर्दोष लोग भी मारे जाते हैं। सड़क पर चलते समय हेलमेट स्वयं भी पहनने के साथ दूसरे सवार को भी पहनाना चाहिए। आंकड़ों से पता चलता है कि सड़क दुर्घटनाओं में सबसे ज्यादा दोपहिया चालक शिकार बनते हैं इसलिए उनको ही सर्वाधिक सावधानी बरतने की जरूरत है।

-वीरेन्द्र कुमार जाटव, दिल्ली

पाठक अपनी प्रतिक्रिया ई-मेल से responsemail.hindipioneer@gmail.com पर भी भेज सकते हैं।